सूचना।

विदित हो कि मैने जैनबालबोधकके चार भाग बनानेकी इच्छा की थी किन्तु प्रमादसे अभीतक पूर्त्ति नहिं कर पाया। अर्थात् प्रथम भाग वी० नि० संवत् २४२६ शालमें बनाया था। द्वितीय भाग वीर नि० सं० २४३३ में और संशोधित द्वितीयभाग १० वर्षबाद वीरनि० सं २४४३ में प्रकाशित किया इससे ४ वर्ष बाद अब यह तृतीय भाग लिख पाया हूं उम्मेद है कि चतुर्थभाग भी इसी वर्षमें लिख सकूंगा।

इस भागके पाठोंकी सूची देखने वा आद्योपांत पढनेसे आपको मालूम होगा कि—इसके प्रत्येक पाठमें जैनधर्मकी शिक्षा व साधारण नीतिज्ञान यथाशक्ति भरा गया है। कारण इसका यह है कि—आजकाल प्रारंभहीमें जैन धर्मकी शिक्षा न मिलनेसे व पाश्चात्य विद्याकी प्रचुरतासे अंगरेजी पढनेवाले जैनी लड़कोंके चित्तमेंसे जैनधर्मसंबंधी सदाचार और महत्त्वका अंश क्रमशः निकलता जाता है। जिसका फल यह देखा जाता है—हमारे अनेक जैनी भाई ग्रेजुयेट होनेपर जैनधर्मसे सर्वथा अनभिज्ञ होनेके कारण जैन धर्मका एक दम लोट फेर करके एक नवीन ही संस्कार कर देनेमें कटिबद्ध हो गये हैं। भविष्यतमें भी यदि प्रारंभसे ही जैनधर्मकी शिक्षा नहि मिलैगी तो सब बालक प्रायः इस सनातन पवित्र जैन धर्मसे अनभिज्ञ तैयार होनेसे इस जैनधर्मका शीघ्र ही ह्रास हो जायगा इस कारण समस्त जैनी बालकोंको प्रारंभसे ही जैनधर्मकी और सदाचारताकी शिक्षा देनेके लिये जैनधर्मसंबंधी पाठोंकी ही बहुलता रक्खी गई है।

(कवरके दूसरे पृष्ठमें देखो)

निवेदन।

जैन विद्यालय और पाठशालाओंमें सुलभताके साथ वास्तविक शिक्षाका प्रचार हो सके इस लिए संस्थाके जन्मदाता सुप्रसिद्ध अनुभवी लेखक श्रीमान् पं० पन्नालालजी बाकलीवालकृत यह जैनबालबोधकका तीसरा भाग सुलभजैनग्रंथमालामें झालरापाटणनिवासी शेठ विनोदीरामजी बालचंदजीकी द्रव्यसे उनके स्वर्गीय सुपुत्र श्रीमान् शेठ दीपचंदजीके स्मरणार्थ (मकरध्वजपराजय ग्रंथकी आई हुई न्योछावरसे) छपाया जाता है। आशा है; शिक्षा संस्थाओंके अभिभावक इससे लाभ उठावेंगे।

विनीत—

श्रीलाल जैन।

मंत्री,

पाठ और विषयोंकी सूची।

श्रीपरमात्मने नमः

जैनबालबोधक

तृतीय भाग।

दोहा।

पंच परम पद मनमि कर, जिनवानी उरधार।
जैन बालबोधक तृतीय, संग्रह करूं विचार ॥ १ ॥

१। श्रीमहावीर प्रार्थना.

(न्यायालंकार पं० मक्खनलालजी कृत)

हे सर्वज्ञ! वीर जिन देवा, चरण शरण हम आते हैं।
ज्ञान अनंत गुणाकर तुमको, चरणों शीस नमाते हैं ॥१॥
कथन तुम्हारा सबको प्यारा, कहीं विरोध नहीं पाता।
अनुभव बोध अधिक जिनके हैं, उन पुरुषोंके मन भाता ॥
दर्शन ज्ञान चरित्र स्वरूपी, मारग तुमने दिखलाया।
यही मार्ग हितकारी सबका, पूर्व ऋषीगणने गाया ॥ २ ॥

रत्नत्रयको भूल न जावें, इसी लिये उपनयन करें।
ब्रह्मचर्यको दृढतम पालें, सप्त व्यसनका त्याग करें ॥ ४ ॥
नीति मार्ग पर नित्य चलें हम, योग्याहार विहार करें।
पालें योग्याचार सदा हम, वर्णाचार विचार करें ॥ ५ ॥
धर्म मार्ग अरु वैध मार्ग से, देशोद्धार विचार करें।
आर्ष वचन हम दृढतम पालें, सत्सिद्धांत प्रचार करें ॥ ६ ॥
श्री जिन धर्म बढै दिन दूनो, पंच आप्तनुति नित्य करें।
सत्संगतिको पाकर स्वामिन्, कर्म कलंक समूल हरें ॥७॥
फलें भाव थे सभी हमारे, यही निवेदन करते हैं।
"लाल" बाल मिल भाल वीरके, चरणोंमें हम धरते हैं ॥ ८ ॥

२ भूधरकृत स्तुति संग्रह.

आदिनाथ स्तुति। सवैया ३२ मात्रा।

ज्ञान जिहाज बैठ गनधरसे, गुणपयोध जिस नाहिं तरे हैं।
अमर समूह आन अवनीसौं, घसि २ सीस प्रनाम करे हैं ॥
किधौं भाल कुकरमकी रेखा, दूर करनकी बुद्धि धरे हैं।
ऐसे आदिनाथके अहनिंस[1], हाथ जोरि हम पांय परे हैं ॥

चंद्रप्रभस्तुति। सवैया मात्रा ३२।

चितवत वदन अमेल[2] चंद्रोपम, तजि चिंता चित होय अकामी[3]।
त्रिभुवनचंद पापतपचंदन[4], नमत चरन चंद्रादिक नामी ॥

१ रात्रि दिन। २ निर्मल चंद्रमाके समान। ३ इच्छारहित। ४ पापरूपी आतापकेलिये चन्द्रमाके समान।

तिहुँ जग छई चंद्रिका कीरति, चिंहनचंद्र[5] चिंतत शिवगामी॥
वंदौं चतुरचकोरचन्द्रमा[6], चंद्रवरन[7] चन्द्रप्रभ स्वामी॥ २॥

शांतिनाथ स्तुति। मत्त गयंद सवैया।

शांतिजिनेश जयौ जगतेश, हरै अघताप निशेशकी नाईं।
सेवतपाय सुरासुरराय, नमैं सिरनाय महीतल ताईं॥
मौलि[8] लगे मनिनील दिपै, प्रभुके चरनौं झलकै वह झांईं[9]।
सूघन पांयं-सरोज-सुगंधि[10], किधौं चलि ये अलिपंकति आईं॥

नेमिजिनस्तुति। कवित्त मनहर ३१ वर्ण।

शोभित प्रियंग[11]-अंग देखे दुख होय भंग,
लाजत अनंग जों दीप भानुभासतैं।
बालब्रह्मचारी उग्रसेनकी कुमारी जादो,—
नाथ[12] तैं निकारी जन्मकादौं-दुखरासतैं[13]॥
भीमभवकाननमें आन न सहाय स्वामी,
अहो नेमिनामी तकि आयो तुम तासतैं।
जैसैं कृपाकंद वनजीवनकी बन्द छोरी,
त्यों ही दासको खलास[14] कीजे भव पासतैं॥४॥

---

५ चन्द्रमाका है चिह्न जिनके ६। बुद्धिमान पुरुषरूपी चकोरोंको चंद्रमाके समान। ७ चन्द्रमाके समान। ८ मुकुटमें। ९ छाया। १० चरण कमलोंकी सुगंधि। ११ प्रियंगुके (कंगनीके) फलके समान श्यामवर्ण है अंग जिनका। १२ हे जादवनाथ १३ दुःखमयी जन्म मरणरूप कीचसे। १४ मुक्त या रहित।

पार्श्वनाथस्तुति । छप्पय सिंहावलोकन ।

जनम[1]-जलधि जलजान, जान जन-हंस-मान[2]सर ।
सरव इन्द्र मिल आन[3], आन[4] जिस धरहिं सीसपर ॥
पर उपकारी बान[5], वान[6] उत्थपइ[7] कुनय[8]—गन ।
गन[9]-सरोजवन-भान, भान[10] मम मोह-तिमिर-घन ॥
घन[11] वरन-देह दुखदाह-हर, हरखत हेरि मयुर-मन ।
मन्मथ-मतंग-हरि पास[12] जिन, जिन[13] विसरहु छिन जगतजन ॥

वर्द्धमान जिनस्तुति ।

दोहा ।

दिढ कर्माचल दलनपवि[14], भवि सरोज रविराय[15] ।
कंचन छवि कर जोर कवि, नमत वीर[16] जिन-पाय ॥ ६ ॥

सवैया ३१ मात्रा ।

रहो दूर अंतरकी महिमा, बाहिज गुन वरनन वल काँपै[17] ।
एक हजार आठ लच्छन तन[18], तेज कोटि रविकिरनि उथापै ॥

---

१ संसार समुद्र तरनेको जहाजके समान । २ भव्य रूपी हंसको मान सरोवर । ३ आकरके । ४ आज्ञा । ५ स्वभाव ६ वानी ७ उखाड देती है । ८ खोटे नयोंको नयाभासोंको । ९ गण (मुनिमंडल) रूपी कमल बनको प्रफुल्लित करने केलिये १० नाश कीजिये । ११ बादलके समान नील रंग वाला देह । १२ पार्श्वनाथ भगवान । १३ मत भूलो । १४ कर्मरूपी मजबूत पर्वतको नष्ट करनेके लिए वज्रके समान १५ भव्यरूपी कमलोंको प्रफुल्लित करनेके लिए सूर्य । १६ वीर भगवानके चरन । १७ बाहिरी गुण बयान करनेकी शक्ति किसमें है । १८ शरीरका तेज ।

सुरपति सहस[1]-आंख-अंजुलिसौं, रूपामृत पीवत नहिं धापै[2] ।
तुम विन कौन समर्थ वीर जिन, जगसौं काढि-मोखमें थापै ॥

श्रीसिद्धस्तुति मत्त गयंद।

ध्यानहुतासनमें[3] अरि इन्धन, झौंक दियो रिपुरोक[4] निवारी।
शोक हरयो भविलोकनको वर, केवलज्ञान मयूख[5] उघारी ॥
लोक अलोक विलोकि भये शिव, जन्मजरामृत पंक[6] पखारी।
सिद्धन थोक बसैं शिवलोक, तिन्हैं पगँ धोक[7] त्रिकाल हमारी॥
तीरथनाथ प्रनाम करैं, तिनके गुनवर्ननमें बुधि हारी।
मोम गयो गलि मूसमझार[8], रह्यो तहँ व्योम[9] तदाकृतिधारी॥
लोक[10]-गहीर-नदीपति नीर, गये तिर तीर भये अविकारी।
सिद्धनथोक बसैं शिवलोक, तिन्हैं पगधोक त्रिकाल हमारी॥

साधुस्तुति। कवित मनहर।

शीतरितु-जोरैं[11] अंग सबही सकोरैं[12] तहां,
तनको न मोरैं[13] नदि धोरैं[14] धीर जे खरे।
जेठकी झकोरैं[15] जहां अंडा चील छोरैं[16] पशु,

---

१ हजार नेत्ररूपी अंजुलियोंसे। २ तृप्त होता है। ३ ध्यानरूपी अग्निमें। ४ कर्मरूपी शत्रुओंकी रुकावटको निवारण किया। ५ किरणें। ६ कीचड। ७ पावांढोक प्रणाम। ८ सांचेमें। ९ आकाशमें। १० संसाररूपी गंभीर समुद्रके पानीको तिरकर। ११ जोरसे। १२ सकोरते हैं। १३ नहि मोडते। १४ नदीके किनारे पर। १५ जेठ महीनेकी लूवोंकी झकोरें। १६ चील पक्षी गर्मीके मारे अंडा छोड देती हैं।

पछी छांह लोरैं[1] गिरि कोरैं[2] तप वे धरे ॥
घोर घनैं[3] घोरैं घटा चहुं ओर डोरैं[4] ज्यों ज्यौं,
चलत हिलोरैं[5] त्यों त्यों फोरैं वल ये अरे।
देह नेह तोरैं परमारथसौं प्रीति जोरैं,
ऐसे गुरु ओरैं हम हाथ अंजुली करैं ॥ १० ॥

दर्शन पाठ.

१

पुलकंत नयन-चकोर पक्षी, हंसत उर-इन्दीवरो।
दुर्बुद्धि चकवी[10] विलखि विछुरी, निविड[11] मिथ्यातम हरयो ॥
आनंद-अंबुधि[12] उमगि उछरयो, अखिल[13] आतप निरदले[14]।
जिन वदनपूरनचन्द्र[15] निरखत, सकल मनवांछित फले ॥१॥

२

मुझ आज आतम भयो पावन, आज विघन विनाशियो।
संसार सागर नीर निवरयो, अखिल तत्त्व प्रकाशियो ॥
अब भई कमला[16] किंकरी[17] मुझ, उभय भव निर्मल ठये।
दुख जरयो दुर्गति वास निवरयो, आज नव मंगल भये ॥

---

१ चाहते वा देखते हैं। २ पर्वतके सिखरोंपर। ३ गरजते हैं। ४ डोलै डोलते हैं। ५ झंझा पवनके झोके। ६ प्रकाश करते हैं। ७ हर्षित हुवा। ८ नेत्ररूपी चकोर पक्षी। ९ हृदयरूपी नील कमल। १० कुमति रूपी चकवी। ११ घन घोर। १२ आनंदरूपी समुद्र। १३ समस्त। १४ नष्ट होगये। १५ भगवानका मुखरूपी चंद्रमा। १६ लक्ष्मी। १७ दासी

३

मन हरन मूरति हेरि * प्रभुकी, कौन उपमा लाइये।
मम सकल तनके रोम हुलसे, हरष और न पाइये॥
कल्यान काल प्रतच्छ प्रभुको, लखैं जो सुरनर घने।
तिहिं समयकी आनंद महिमा, कहत क्यों मुखसौं बने॥

४

भरनयन निरखे नाथ तुमको, अवर बांछा ना रही।
मन भर मनोरथ भये पूरन, रंक मानों निधि लई॥
अब होहु भव भव भक्ति तुमरी, कृपा ऐसी कीजिये।
कर जोर 'भूधरदास' विनवै यही वर मोहि दीजिये॥

ब्रह्मचारी ज्ञानानंदजीकृत दर्शन।

अति पुण्य उदय मम आया, प्रभु तुमरा दर्शन पाया।
अब तक तुमको विन जाने, दुख पाये निजगुण हाने॥
पाये अनन्ते दुःख अवतक जगतको निज जानकर।
सर्वज्ञभाषित जगत हितकर, धर्म नहिं पहिचानकर॥
भवबन्धकारक सुखप्रहारक, विषयमें सुख मानकर।
निजपर विवेचक ज्ञानमय, सुखनिधिसुधा नहिं पानकर॥१॥
तव पद मम उरमें आये, लखि कुमति विमोह पलाये।
निज ज्ञान कला उर जागी। रुचि पूर्ण स्वहितमें लागी॥

* देख।

रुचि लगी हितमें आत्मके, सतसंगमें अब मन लगा।
मनमें हुई अब भावना, तब भक्तिमें जाऊं रँगा॥
प्रियवचनकी हो टेव गुणि गुण गानमें ही चित पगै।
शुभशास्त्रका नित हो मनन, मन दोषवादनतैं भगै॥ २॥
कब समता उरमें लाकर। द्वादश अनुप्रेक्षा भाकर।
ममतामय भूत भगाकर। मुनिव्रत धारूं वन जाकर॥
धरकर दिगम्बर रूप कब, अठवीसगुण पालन करूं।
दो बीस परिषह सह सदा, शुभधर्म दश धारन करूं॥
तप तपूं द्वादश विध सुखद नित, बन्ध आस्रव परिहरूं।
अरु रोकि नूतन कर्म संचित, कर्मरिपुको निर्जरूं॥ ३॥
कब धन्य सुअवसर पाऊं। जबनिजमें ही रम जाऊं।
कर्तादिक भेद मिटाऊं। रागादिक दूर भगाऊं॥
कर दूर रागादिक निरन्तर, आत्मको निर्मल करूं।
बल ज्ञान दर्शन सुख अतुल लह, चरित क्षायिक आचरूं॥
आनंद कंद जिनेंद्र बन, उपदेशको नित उच्चरूं।
आवै 'अमर' कब सुखद दिन, जब दुखदभवसागर तरूं॥

३ पंचामृत अभिषेक।

दोहा।

श्री जिनवर चौवीस वर, कुनय ध्वांतहर भान।
अमित वीर्य दृग बोध सुख,-युत तिष्ठो इह थान॥ १॥

नाराच छंद।

गिरीश सीस पांडुपै, सचीश ईस थापियो।
महोत्सवो अनंदकंदको सवै तहां कियो॥
हमै सो शक्ति नाहिं, व्यक्त देख हेतु आपना।
यहां करैं जिनेंद्रचन्द्रकी, सुबिंब थापना॥ २॥

(पुष्पांजलि क्षेपण करके श्रीवर्णपर जिनबिंबको स्थापना करना)

सुन्दरी छंद।

कनक मणिमय कुंभ सुहावने, हरि सुछीर भरे अति पावने।
हम सुवासित नीर यहां भरैं। जगत पावन पाय तरैं धरैं॥३॥

(पुष्पांजलि क्षेपण करके वेदीके कोनेमें चार जल भरे कलश स्थापन करना)

हरिगीता छंद।

शुद्धोपयोग समान भ्रमहर, परम सौरभ पावनो।
आकृष्ट भृंग समूह गंग-समुद्भवो अति भावनो॥
मणिकनक कुंभ निसुंभ किल्बिष, विमल शीतल भरि धरौं।
श्रम खेद मल निरवार जिन, त्रय धार दे पांयनि परौं॥४॥

(शुद्धजलकी तीन धारा जिनबिंबपर छोडना)

अति मधुर जिनधुनि सम सुप्राणित, प्राणिवर्ग स्वभावसौं।
बुध चित्त सम हरि चित्त नित्त, सुमिष्ट इष्ट उछावसौं॥
तत्काल इक्षु समुत्थ प्राशुक, रत्नकुंभ विषै भरौं।
यम त्रास ताप निवार जिन, त्रयधार दे पांयन परौं॥ ५॥

(इक्षुरसकी[1] धारा देना ।)

निष्टप्त क्षिप्त सुवर्णमद दमनीय ज्यौं विधि जैनकी ।
आयुप्रदा बल बुद्धिदा रक्षा, सु यों जिय-सैनकी ॥
ततकाल मंथित, क्षीर उत्थित, प्राज्यमणिझारी भरौं ।
दीजे अतुलबल मोहि जिन, अयधार दे पांयनि परौं ॥ ६ ॥

(घृतामृतकी धारा देना)

शरदभ्र शुभ्र सुहाटक द्युति, सुरभि पावन सोहनो ।
क्लीवत्वहर बलधरन पूरन, पयसकल मनमोहनो ॥
कृत उष्ण गोथनतैं समाहृत, मणि जडित घटमें भरौं ।
दुर्बल दशा मो मेट जिन, अयधार दे पाँयनि परौं ॥ ७ ॥

(दुग्धकी धारा देना)

वर विशद जैनाचार्य ज्यों, मधुराम्ल कर्कशता धरैं ।
शुचिकर रसिक मंथन विमंथन, नेह दोनौं अनुसरैं ॥
गोदधि सुमणि भृंगार पूरन, लायकर आगे धरौं ।
दुखदोष कोष निवार जिन, अयधार दे पांयनि परौं ॥ ८ ॥

(दही रसकी धारा देना)

दोहा ।

सर्वौषधी मिलाय करि, भरि कंचन भृंगार ।
यजों चरन अयधार दे, भवरुज बाधा टार ॥ ९ ॥

(सर्वौषधिकी धारा देना)

इति पंचामृत अभिषेक समाप्त ।

---

१ । इक्षुरसके अभावमें पवित्र बूरे या मिश्रीके शर्वतसे धारा देना.

४. सप्त व्यसन।

व्यसन नाम किसी विषयमें अहोरात्र मग्न (लवलीन) रहनेका है। मग्न भी ऐसा रहै जिसका दूसरे विषयोंकी तरफ ध्यान ही न रहै। इस प्रकारसे यदि खोटे कार्योंमें मग्न रहै तो उन्हे कुव्यसन कहते हैं। परंतु अच्छे कार्योंमें आजकल वहुत कम लवलीन होते हैं इस कारण प्रचलित भाषामें कुव्यसनको व्यसन शब्दसेही उच्चारण करते वा समझते हैं। ऐसे कुव्यसन सात हैं। जैसे, जूआ खेलना १, मांस खाना २, मदिरा पान करना ३, शिकार खेलना ४, वेश्या गमन ५, परस्त्री सेवन ६, और चोरी करना ७, ये सात व्यसन (कुव्यसन) हैं।

१। रुपये पैसे और कौडियों वगैरहसे मूठ खेलना तथा हार जीत पर दृष्टि रखते हुये शर्त्त लगाकर कोई भी काम करना अफीमके नीलामके आंक पर सर्च लगाना व रुपयें रखना सो जूआ कहलाता है। जूआ खेलनेवालेको जुवारी कहते हैं। जुवारी लोगोंका कोई विश्वास नहिं करता क्योंकि जूएमें हार होनेसे चोरी वेईमानी करनी पडती है। जुआरीका सब जगह अपमान होता है। जातिके लोग उसकी निंदा करते हैं और राजा दंड देता है। तास गंजफा खेलना भी जूएमें समझना चाहिये।

२। जंगम [त्रस] जीवोंको मारकर अथवा मरे हुये

जीवोंका कलेवर खाना सो मांसखाना कहलाता है। मांस खानेवाले हिंसक निर्दयी कहलाते हैं।

३। शराब [मदिरा] भंग, चरस, चा, गांजा, वगैरह नशेवाली चीजोंका सेवन करना सो मदिरापान कहाता है। इनके सेवन करनेवाले शराबी भंगडी गंजेडी नसेबाज़ कहलाते हैं। शराब पीनेवालेको धर्म कर्म वा भले बुरेका कुछ भी विचार नहिं रहता। उनका ज्ञान नष्ट होजाता है और तौ क्या घरके लोगोंतकका उनपर विश्वास नहिं होता।

४। जंगलके रीछ, बाघ, सिंह, सूअर हिरन वगैरह स्वछंद विचरनेवाले तथा उडते हुये छोटे बडे समस्त प्रकारके पक्षियों तथा और जीवोंको बंदूक तीर वगैरहसे मारना सो शिकार खेलना कहाता है। इस बुरे काम करनेवालेको महान् पापका बंध होता है। इन पापियोंके हाथमें बंदूक तीर कमान देखतेही जंगलके जानवर भयभीत होजाते हैं।

५। वेश्या (बाजारी औरत) से रमना उसके घर जाना उसका नृत्य देखना वा किसी प्रकारका संबंध रखना सो वेश्यागमन है। वेश्यालंपटी मनुष्यका कोई विश्वास नहिं करता, सब कोई उसे रंडीबाज वगैरह कहते हैं।

६। अपनी स्त्री अर्थात् जिसके साथ धर्मानुकूल विवाह किया है उसके सिवाय अन्यस्त्रियोंके साथ व्यभिचार सेवना करना सो परस्त्रीगमन व्यसन है। अपनी स्त्रीके सिवाय अन्य छोटी स्त्री तौ बेटीके समान, बराबरकी बहन

के समान, वडी माताके समान होती है। जिसने अपनी स्त्रीके सिवाय अन्यस्त्रीके साथ विषय सेवन किया उसने मा, बेटी, वहनके साथ व्यभिचार किया समझा जाता है।

७। प्रमाद या लोभके वशीभूत हो विना दी हुई, किसीकी गिरी हुई, पडी हुई, रखी हुई चीजको उठालेना अथवा उठाकर दूसरेको दे देना सो चोरी है। जिसकी चीज चोरीमें चली जाती है उसको वडा कष्ट होता है उसके प्राण पीडे जाते हैं। जो चोरी करता है उसके प्राण भी वडे मलीन होते हैं, भयभीत रहता है, राजाको खवर हो जाती है तो वह वडा भारी दंड देता है, चोरको सव कोई घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं। इसलिये—

दोहा।

जुआ खेल अरु मांस मद, वेश्या विसन शिकार।
चोरी पररमनीरमन, सातों विसन निवार॥

५। सागरदत्त और सोमक।

किसी समय कौशांबी नगरीमें जयपाल नामके राजा हो गये हैं। उसी नगरमें एक समुद्रदत्त सेठ था उसकी स्त्री का नाम समुद्रदत्ता और पुत्रका नाम सागरदत्त था। वह वहुत ही सुंदर था। उसकी उमर चार वर्षकी थी। उसे देखकर सवका चित्त उसे खिलानेके लिये व्यग्र हो उठता

था। समुद्रदत्तका एक गोपायन नामका पड़ोसी था। और पूर्व जन्मके पापसे वह दरिद्र था। उसकी स्त्रीका नाम सोमा और पुत्रका नाम सोमक था। सोमक धीरे २ बढकर अपनी तोतली बोलीसे माता पिताको आनंदित करने लगा और वह तीन वर्षका होगया था।

एक दिन गोपायनके घर पर सागरदत्त और सोमक अपना बालसुलभ खेल खेल रहे थे। सागरदत्तको उसकी मूर्ख माताने बहुकीमती गहने पहरा दिये थे सो वह गहने पहिरे ही गोपायनके घर खेलनेको चला गया था। बालकोंके खेलते समय गोपायन घरमें आया। सागरदत्तको गहने पहिरे देख उसके मनमें पापका बाप लोभ जाग उठा। उसने घरका सदर दरवाजा बंद करके एक कमरेमें सागरदत्तको बुलाया, उसके साथ २ सोमक भी चला गया था। कमरेके भीतर आ जाने पर गोपायनने सागरदत्तको बडी निर्दयता के साथ छुरीसे गला काट कर उसके सब गहने उतार कर एक गढेमें गाड़ दिया।

कई दिनों तक बराबर कोशिश करने पर भी जब सागरदत्तके माता पिताको अपने बच्चेका कुछ भी पता न मिला तो उन्होंने जान लिया—किसी पापीने गहनोंके लोभसे उसे मार डाला है। उन्हें अपने प्रिय बच्चेकी मृत्युसे जो कुछ दुःख और बालकको गहने पहरानेकी भूलका पश्चाताप हुआ उसे वे ही लोग अनुभव कर सकते हैं जिनको कभी ऐसा दैवी

प्रसंग आया हो। आखिर वेचारे अपना मन मसोस कर अपनी भूलपर पश्चात्ताप करते हुए रह गए। इसके सिवाय और करते भी क्या?

कुछ दिन वीत जाने पर एक दिन वालक सोमक समुद्र-दत्तके घरके आंगनमें खेल रहा था। तव समुद्रदत्ताके मनमें न जाने क्या बुद्धि उत्पन्न हुई सो उसने सोमकको वडे प्यार से अपने पास बुलाकर पूछा-भैया! वतला तौ, तेरा साथी सागरदत्त कहां गया है? तूने उसे देखा है?

सोमक वालक था और साथ ही वाल स्वभावके अनु-सार पवित्रहृदयी था, इसलिये उसने झटसे कह दिया कि वह तौ मेरे घरमें एक गढ़ेमें गडा हुआ है। वेचारी समुद्र-दत्ता अपने बच्चेकी दुर्दशा सुनते ही धडामसे पृथिवी पर गिर पडी। इतनेमें समुद्रदत्त भी वहीं आ पहुंचा। उसने उसे होशमें लाकर उसके मूर्छित हो जानेका कारण पूछा। समुद्र-दत्ताने सोमकका कहा हुवा हाल उसे सुना दिया। समुद्र-दत्तने उसी समय दोडते हुये जाकर यह खवर पुलिसको दी। पुलिसने आकर मृत वच्चेकी सडी हुई लाससहित गोपायनको गिरफतार किया। मुकद्दमा राजाके पास पहुंचने पर राजाने गोपायनके पापानुसार उसे फांसीकी सजा दी।

पापी लोग कितना ही छुपकर पाप क्यों न करें परन्तु वह छुपता नहीं, कभी न कभी प्रगट हो ही जाता है और उसका फल इसलोक और परलोकमें अनंत दुःख भोगने

पडते हैं। इसलिए सुख चाहने वाले पुरुषोंको क्रोध मान माया लोभादि प्रमादोंके वशीभूत हो हिंसा, चोरी-झूठ, कुशील आदि पापोंको छोडकर अहिंसादि पांच अणुव्रत धारण करना चाहिये।

इस कहानीसे बालकोंको यह शिक्षा लेनी चाहिये कि जबतक कि वे अपने आप गहनोंकी रक्षा करनेमें समर्थ न हो जांय तबतक उन्हें कोई भी गहना नहिं पहराना चाहिये। बालकोंका रात दिन मन लगाकर विद्या पढना ही उत्तम गहना है।

६ दूध.

जन्मसे लेकर बरस डेढ वर्ष तक बालकोंको एक मात्र दूध हीका सहारा होता है। दूध न मिले तो उनका जीना कठिन हो जाय। सबसे बढकर माताका दूध होता है। यदि माताके कमजोर होने पर माताका दूध न मिले तो गाय या बकरीका दूध भी पिलाया जाता है। बडे होने पर भैंस का दूध भी पिया जाता है परन्तु गायके दूधकी बराबर निर्दोष गुणकारक दूध भैंसका नहिं होता।

ताजा दूध सबसे अच्छा भोजन है और देर तक रक्खे रहनेसे अर्थात् एक मुहूर्तके (४८ मिनिटके) पश्चात् वह बिगड जाता है उसमें चलते फिरते त्रस जीव पैदा हो जाते हैं ऐसा दूध गरम करके पीने पर भी शरीरको रोगी

बनाता है इस कारण दोहे पीछे या तो उसी वक्त गरम गरम ताजा दूध मिश्री या बूरा डालकर छानके पी लेना चाहिये या फिर तुरन्त ही (४८ मिनटके भीतर २) गर्म कर लेना चाहिये। गरम दूध भी देरतक रक्खा रहने पर ठंडा होकर विगड़ जाता है। बहुत देरतक दूध रखना हो तो सिगड़ीमें कोयलेकी मंद २ आंच पर रख देना चाहिए। परन्तु याद रहे कि वहुत देर ओटानेसे दूध गाढ़ा हो जाता है। गाढा होनेसे वह दूध देरमें पचता है, कब्ज करता है। कमजोर बालक या वृद्धको वह दूध प्रायः नहीं पचता इस कारण जहांतक बने ताजा दूध ही दो चार उफानदेकर पिया जावे।

गाय साफ सुथरी जगहमें वांधी जानी चाहिये। जंगलमें छोडकर घास चराना चाहिये। दूध दुहते समय भी सफाई रखना चाहिए। दुहनेसे पहिले गायके थनोंको साफ पानीसे धोलेना चाहिये जहां ऐसी सफाई न हो वहांका दूध विना उबाले कदापि नहीं पीना चाहिये।

मोलका (वाजारका) दूध कदापि नहिं पीना चाहिये वह वहुतही हानिकारक होता है। बहुत देरका पडा हुआ खराब दूध होता है। दूधमें ग्वाले लोग वा हलवाई लोग अपवित्र वेछाना पानी मिलानेके सिवाय आरारूट वगेरह पदार्थ मिलाकर गाढा करके वेचते हैं ऐसा दूध कदापि स्वास्थ्यकर नहिं होता। जहां तक बनै समस्त गृहस्थोंको

और सब खर्च घटाकर कमसे कम एक एक गाय अपने घरमें ही पाल कर उसके दूध दही मठेसे स्वास्थ्यकर स्वादिष्ट भोजन बनाकर खाना चाहिये।

दूधसे अनेक तरहकी खानेकी चीजें बनती हैं। दूधको उबालकर मलाई रबड़ी खोआ बनाते हैं। चावल डालकर खीर बनाते हैं। खोएसे बरफी पेडा कलाकंद वगैरह अनेक प्रकारकी मिठाइयें बनायी जाती हैं। ओटाये दूधमें पीने लायक ठंडा हो जाने पर दही छाछ वगैरहकी खटाई [जामन] डालकर दही और दहीमें पानी मिलाकर रईसे बिलोकर मक्खन निकालकर घी बनाते हैं। मक्खन निकालने पर दहीका मठा बन जाता है। मक्खन निकाला हुआ मठा या छाछ सवेरेके भोजनके पश्चात् नित्य पीनेसे बडा ही पाचक वा गुणकारी होता है। दूध दिनके अंतमें पीना विशेष लाभदायक है।

७. जिनेंद्र गर्भमंगल.

पणविवि पंचपरम गुरु, गुरु जिनसासनो।
सकल सिद्धिदातार सुविघन विनाशनो॥
सारद अरु गुरु गौतम, सुमति प्रकासनो।
मंगलकर चउसंघहि, पाप पणासनो॥

१ नमस्कार करता हूं २ महान् ३ मुनि, अर्जिका, श्रावक, श्राविकाका समूह।

पाप प्राणमन गुणहि गरवा, दोष अष्टादश रह्यो।
धरि ध्यान कर्म विनाश केवल ज्ञान अविचल जिन लह्यो॥
प्रभु पंच कल्याणक विराजित, सकल सुर नर ध्यावही।
त्रैलोक्यनाथ सुदेव जिनवर, जगतमंगल गावही॥ १॥

जाके गर्भ कल्याणक, धनपति[2] आइयो।
अवधि ज्ञानपरवानैं[3], सुइंद्र पठाइयो[4]॥
रचिनव बारह जोजन, नयरि[5] सुहावनी।
कनक रयण[6] मणिमंडित, मंदिर अति बनी॥

अति बनी पौरि पगार[7] परिखा[8], सुवन उपवन सोहए।
नर नारि सुंदर चतुर भेखसु, देख जन मन मोहए॥
तहँ जनक गृह छह मास प्रथमहि, रतनधारा बरसियो।
पुनि रुचिक वासिनि[9] जननि सेवा[10], करहिं सबविधि हरसियो॥

सुर कुंजर सम कुंजर, धवल धुरंधरो।
केहरि केसर शोभित, नखसिख सुंदरो॥
कमला कलशन्हवन, दुइ दाम सुहावनी।
रवि शशि मंडलमधुर मीनजुग पावनी॥

पावनि कनकघट जुगम पूरन, कमल कलित सरोवरो।
कल्लोलमालाकुलित सागर, सिंघ पीठ मनोहरो॥

---

१ गुणोंसे भारी २ कुवेर ३ अवधि ज्ञानके द्वारा ४ इंद्रका भेजा हुवा ५ नगरी ६ रत्न ७ कोट प्राकार ८ खाई ९ रुचिक पर्वतपर रहने वाली देवियां १० माताकी सेवा।

रमणीक अमर विमान फणिपति, भुवन भुवि छवि छाजई।
रुचि रत्नराशि दिपंत दहनसु, तेज पुंज विराजई ॥ ३ ॥
ये सखि सोरह सुपने सूती सयनही।
देखे माय मनोहर, पच्छिम रयनही ॥
उठि प्रभात पिय पूछियो, अवधि प्रकासियो।
त्रिभुवन पति सुत होसी, फल तिहँ भासियो ॥
भासियो फल तिहि चिचदंपति, परम आनंदित भये।
छह मासपरि नवमास बीते, रयण दिन सुखसों गये ॥
गर्भावतार महँत महिमा, सुनत सब सुख पावही।
भणि 'रूपचंद' सुदेव जिनवर, जगतमंगल गावही ॥ ४ ॥

———:o:———

सारार्थ—जिस समय तीर्थंकर भगवान अपनी माताके गर्भमें आते हैं उससे छह महीने पहिले ही प्रथमस्वर्गका इंद्र कुवेरको भेजता है कुवेर भगवानके जन्म होनेवाली नगरीमें आकर उस नगरीको रत्नमय मंदिर, वन उपवन वगेरहकी शोभासे सुंदर रचना कर देता, जिसको देखकर सबको आनंद होता है। उसी समयसे नगरीमें रत्नोंकी वर्षा होने लगती है और रुचिक पर्वतपर रहनेवाली देवियां माताकी नाना प्रकारसे सेवा करने लगती हैं। छह महीने बाद माताको रात्रिके पिछले भाग १६ स्वप्न दिखाई देते हैं। माता सवेरे ही उठकर अपने स्वामीको सब सुपनोंको सुनाकर फल पूछती है तब स्वामी उनका फल कहते हैं—तेरे गर्भसे तीन लोकके स्वामी

तीर्थंकर भगवान जन्म लेंगे। यह बात जानकर माता पिता दोनो ही हर्षायमान होते हैं और भगवानके जन्म समय पर्यंत बडे आनंदसे समय व्यतीत करते हैं।

८। श्रावकोंके नित्य करनेके षट् कर्म।

देवपूजा गुरूपास्तिः, स्वाध्यायः संयमस्तपः।
दानं चेति गृहस्थानां, षट् कर्माणि दिने दिने॥

अर्थ—प्रतिदिन जिनेन्द्र देवकी पूजा करना, गुरुकी उपासना करना, स्वाध्याय करना, यथाशक्ति कुछ न कुछ संयम पालना, कुछ न कुछ तप धारण करना और चार प्रकारके दानोंमेंसे कोई न कोई दान करना ये गृहस्थियोंके षट् कर्म हैं॥ १॥

देवपूजा—प्रतिदिन मंदिरजीमें जाकर अष्टद्रव्यसे पूजा करना। यदि विद्यार्थियोंको पढनेके कारण विशेष समय नहिं मिले तो, अक्षत, लौंग वगेरह कोई भी एक द्रव्य लेकर ही नित्य नियम पूजा बोलकर आठों द्रव्योंकी जगह वह एक द्रव्य ही चढाकर पूजा कर लेना अथवा एक दो चार पांच अर्घही चढा देना अथवा कमसे कम आठों द्रव्योंमेंसे कोई एक द्रव्य लेकर उस द्रव्यको चढानेका पद्य व मंत्र बोलकर एकही द्रव्य चढा देना, तथा भगवानकी कोई भी स्तुति बोल देना सो देवपूजा है।

गुरूपास्ति—निर्ग्रंथ गुरुकी उपासना कहिये सेवा पूजा संगति करना परन्तु निर्ग्रंथगुरुकी प्राप्ति इस पंचम काल में होना कठिन साध्य है इसलिये सम्यग्दृष्टि ज्ञानवान विद्वान अहल्लक क्षुल्लक वा ब्रह्मचारी त्यागीको प्रणाम वन्दना करके उनके पास बैठना उनका उपदेश सुनना । यदि अहल्लक वगैरहकी प्राप्ति न हो तो शास्त्र बांचनेवाले विशेष ज्ञानी पंडितकी सेवामें बैठना तथा कोई भी उपदेश सुनना । तथा गुरुओंकी स्तुति स्तोत्रोंका पाठ करना सो भी गुरूपास्ति कहाती है।

स्वाध्यायकरना—कोई भी शास्त्रजी लेकर चौकीपर विराजमान करके विनयके साथ समझ समझकर बांचना । तथा बांचना नहिं आवै तो कोई अन्य भाई स्वाध्याय करते हों उनके पास बैठकर सुनना तथा प्रश्नोत्तर चर्चा करना, दूसरोंके प्रश्नोत्तर चर्चा सुनना सो स्वाध्याय है । तथा विद्यार्थियोंको यदि पृथक् शास्त्रके स्वाध्याय करनेको समय नहिं मिलै तो अपने पढे हुये धर्मशास्त्रके पाठोंको फेरना वा उनका अर्थ विचार करना यह भी नित्य स्वाध्यायमें गिना जा सकता है ।

संयम करना—पांच इन्द्रियों और मनको वशमें करके पंचेंद्रियोंके विषय सेवनमें उदासीनता धारण करना संयम है । तथा सब नहिं बनै तो किसी एक दो विषयमें नित्य उदासीनता रखना भी संयम है । जैसे—सामायिकके बाद

नियम करले कि भोजन पान वस्त्राभूषणादिक भोग उपभोगोंमें विलासिता (चाह) नहिं करना।

तप—शरीर और कषायों को कृश करनेके लिये जो क्रिया की जाय उसको तप कहते हैं। जैसे आज मैं एक ही वार भोजन करूंगा, अथवा एक या दो अथवा अमुक ही रस खाऊंगा, या उपवास करूंगा। अथवा आज मैं भूख से आधा या चौथाई भोजन कम करूंगा या सामायिकके समय कायोत्सर्ग करूंगा या व्रतियों वा गुरु जनोंकी इतनी देर तक सेवा करूंगा इत्यादि रोज नियम करना सो तप है।

दान—अभयदान, आहार दान, विद्या दान, वा औषधि दान ये ४ प्रकारके दान हैं। मुनि, अइलक क्षुल्लक, ब्रह्मचारी आदि त्यागी पात्रोंको नवधा भक्ति आदि आदरपूर्वक आहार या औषधि या शास्त्रोंका दान करना। यदि इनकी नित्य प्राप्ति न हो तो किसी भी धर्मात्मा जैनी भाईको आदरपूर्वक प्रत्युपकारकी वांछा नहिं रखके जिमाकर भोजन करना अथवा करुणा करके गरीब भिखारियोंको कुछ भी खानेको देकर भोजन करना अथवा कमसे कम भोजन करनेसे पहिले वा पीछे कुछ भोजन अलग कर देना वा छोड देना जो कि कुत्ते गाय बैलोंको दिया जा सकै। इसीप्रकार औषधिका सबको या दो चार जनोंको नित्य दान करना। वा किसी असमर्थ विद्यार्थीको पुस्तक देना या किसीको दया करके रोज रोज पढा देना, तथा कोई

मनुष्य पशु पक्षी भयभीत हो जानसे मारे जाते हों तो तन मन धनसे उनके प्राण बचा देना वा निर्भय कर देना तथा आजकल जगह २ सेवा समितियें स्थापन हुई हैं उनमें सभासद होकर गरीब रोगी असमर्थ असहाय जीवोंको तन मनसे सहायता करना इत्यादि अनेक काम अभयदानके हैं सो इन चारों प्रकारोंके दानोंमेंसे कुछ न कुछ नित्य प्रति दान करना सो गृहस्थीका नित्य दान कर्म है।

९ सत्यवादी चोर.

बहुत प्राचीन समयमें उज्जैन[1] नगरके निकटवर्ती वनमें एक समय मुनि महाराज पधारे। उनकी प्रशंसा सुन कर नगरके प्रायः सभी लोग दर्शनार्थ आये, उन सबको मुनि महाराजने धर्मोपदेश देकर अनेकोंको गृहस्थ धर्म अनेकोंको मुनिधर्म ग्रहण कराया। अनेकोंने हिंसा चोरी झूंठ कुशील आदि पापोंसे बचे रहनेकी प्रतिज्ञायें लीं। किसीने सप्तव्यसन व मद्य मांस मधु आदिका त्याग किया। जब सब जने मुनि महाराजका धर्मोपदेश सुनकर यथोचित त्याग ग्रहण करके चले गये तब एकांत पाकर एक चोर भी मुनि

---

१ प्राचीन कालसे इसमें उच्च प्रकृतिके जैन लोग ही रहते वा राजा होते आये हैं इसी कारण इसका नाम उत्+जैन=उज्जैन पडा है आजकल इसे उज्जैनी-उज्जयनी उजीण कहते हैं यह ग्वालियर राज्यके मालवा प्रांतमें ऐतिहासिक नगर है।

महाराजके पास हाथ जोड नमस्कार करकें कहने लगा कि महाराज आपने सबको धर्मोपदेश देकर सबको कल्याणकारक त्याग ग्रहण कराया सो मुझे भी कोई उपदेश दीजिये अथवा कोई प्रतिज्ञा दीजिये कि जिससे मेरा भी कल्याण हो।

मुनि महाराजने कहा कि तू कौन है। तेरी आजीविका (धंदा) क्या है? चोरने कहा कि महाराज! मैं चोर हूं चोरी करना ही मेरी आजीविका है। तब मुनि महाराजने कहा कि—अच्छा हम चोरी छोडनेको (जो कि महा अकल्याणकारी है) तो नहिं कहते परन्तु तुम झूठ बोलने का त्याग कर दो।

यह सुनकर चोरने कहा कि—महाराज यह व्रत तो मैं पाल सकता हूं सो चाहे जो हो जाय मैं आजसे कभी झूठ नहिं बोलूंगा। ऐसी प्रतिज्ञा करकें मुनि महाराजको नमस्कार करके चला गया। संध्या होने पर वह चोर अंधेरी रातमें राजाकी घुडशालामेंसे एक घोड़ा चुरानेकी इच्छासे गया। वहां दरवाजे पर जाते ही द्वारपालने पूछा कि तू कौन है? चोरने झूठ बोलना छोड दिया था अतः लाचार होकर कहना पडा कि "मैं चोर हूं"। द्वारपालने ठट्ठा समझ कुछ नहिं कहा, आगे जाने दिया। आगे जाने पर किसीने फिर पूछा कि तू कौन है? तब चोरने भी कह दिया कि 'मैं चोर हूं' पूछनेवालेने समझा कि यहींका

कोई आदमी है सो ठट्ठा से बोलता है इस कारण कुछ भी किसीने शक नहीं किया। जब घुडशालामें जाकर एक लाल घोडेको खोलने लगा तो फिर किसीने पूछा कि—कौन है? तब चोरने फिर वही उत्तर दिया कि "मैं चोर हूं" उसने फिर पूछा कि तू क्या करता है? चोरने कहा कि घोडा चुरा कर ले जाता हूं। पूछनेवालेने समझा कि चरवादार (सहीस) होगा इसलिये कुछ विशेष ध्यान नहिं दिया। फिर वह चोर घोडेपर चढकर चला तो दरवाजे पर तथा रास्तेमें कई जनोंने पूछा कि "कौन है" तो सबका उत्तर यही देता गया कि "मैं चोर हूं" कहां जाता है पूछा उसे कहता गया कि घोडा चुराकर लेजाता हूं इसी प्रकार शहरमें कई जनोंने पूछा परन्तु किसीने भी चोरका संदेह नहिं किया कि यह सचमुच चोर ही है। क्योंकि सबने यही समझा कि—नदी पर पानी पिलानेको लेजाता है।

चोरने जब देखा कि आज तो सच बोलनेसे बडा ही लाभ हुवा कि मुझे किसीने भी चोर नहीं समझा—चाहे जो कुछ हो जाय कदापि झूठ नहिं बोलूंगा इसप्रकार प्रतिज्ञा को फिर भी दृढतासे धारण करके घोडेको एक निर्जन वनमें ले जाकर छिपाकर बांध दिया और आप रास्ते पर एक बड़के पेडके नीचे सोगया। इधर थोडी देरके बाद सहीस दाना देनेको लाया तो घुडशालमें घोडा नहिं देखा इधर उधर पूछताछ करने पर मालूम हुवा कि वह वास्तवमें चोर

ही था और राजाके चढनेका बहुमूल्य घोडा चुराकर ले गया।

कोतवालको खबर करने पर कोतवालने उसी वक्त कई घुडसवार चारों तरफ दौडाये। कई घुडसवारोंने उसी बडतले उस चोरको सोता देख जगाकर इसप्रकार पूछा—

राजपुरुष—अरे उठ, तू कौन है?

चोर—(हडबडाकर उठा और बोला) मैं चोर हूं।

राजपुरुष—तूने क्या चोरी की?

चोर—आज तो एक घोडा चुराया है।

राजपुरुष—किसका घोडा चुराया?

चोर—यहांके राजाका।

राजपुरुष—घोडाका रंग कैसा है?

चोर—लाल है।

राजपुरुष—वह घोडा अब कहां है?

चोर—यहां दक्खनकी तरफ एक कोश पर आमका पुराना पेड है उसीसे बंधा है।

यह सुनकर कई घुड सवार दौडे और घोडा खोलकर ले आये परन्तु उसे देखकर सबही जने आश्चर्यमें हो गये क्योंकि—उस घोडेका रंग उस समय नीला था।

राजपुरुषोंने चोरसे कहा कि—क्यों बे! तू तो लाल रंगका घोडा बताता था यह तो नीले रंगका घोडा है? चोरने कहा कि महाराज मैंने आज ही मुनि महाराजके पास झूंठ

बोलना छोड दिया इसलिये मैं सच २ कहता हूं कि ' मैं राजाकी घुडशालामेंसे लाल रंगका घोड़ा ही चुराकर लाया था ' । इतने ही में चोर पर फूलोंकी वर्षा होने लगी और आकाशवाणी (देववाणी) हुई कि " बेशक तू सच्चा है धन्य है तेरे सत्य व्रतको जो तूने अपने ऊपर महा विपद आने पर भी रंचमात्र असत्य भाषण नहिं किया । घोडेका रंग तो हमने पकड़ दिया है" ।

इस प्रकारकी आकाशवाणी सुनकर राजपुरुष चोरको राजाके पास ले गये और आकाशवाणीका सब हाल कह सुनाया तो राजाने उसके सत्य व्रत पर प्रसन्न होकर वह अपराध क्षमा कर दिया और कई लाख रुपयोंके ग्रामादि देकर अपनी पुत्रीके साथ विवाह करलेनेको भी कहा । चोरने कहा कि " महाराज आपने ये सब इनाम तो दिये परंतु मैं अभी ग्रहण नहिं कर सकता क्योंकि जिस व्रतके प्रभावसे एकही दिनमें ऐसा ऐश्वर्य मिला तो सबसे पहिले उन मुनि महाराजके पास जाकर और भी कोई व्रत ग्रहण करूंगा" इस प्रकार कहकर वह मुनि महाराजके पास गया और उनके धर्मोपदेशसे हिंसा चोरी झूठ कुशील व परिग्रह इन पांचों पापोंका सर्वथा त्याग करके पांच महाव्रत धारण कर मुनि होगया और महा तपस्या करके स्वर्गको गया ।

———:०:———

१०. जिनेंद्र जन्म मंगल.

मतिसुत अवधि विराजित, जिन जव जनमियो।
तिहूं लोक भयो सोभित, सुरगन भरमियो॥
कल्पवासिघर घंट अनाहद, वज्जियो।
ज्योतिष घर हरि नाद सहस—गल गज्जियो॥

गज्जियो सहजहि संख भावन—भुवन शब्द सुहावने।
वितरनिलय पटपटह वज्जहि, कहत महिमा क्यों बने॥
कंपित सुरासन अवधिबल, जिनजन्म निहचै जानियो।
धनराज तव गजराज मायामयी निमय आनियो॥ १॥

जोजन लाख गयंद वदन सौ निरमये।
वदन वदन वसु दंत दंत सर संठये॥
सर सर सौपण्ण वीस कमलिनी छाजही।
कमलिनी कमलिनी कमल पचीस विराजही॥

राजही कमलिनी कमल अठोत्तर सौ मनोहर दल बने।
दल दलहि अपछर नटहि नवरस हाव भाव सुहावने॥
तहँ कनक किंकणि वर विचित्र सु अमर मंडप सोहए।
धनघंटचमर धुजा पताका, देख त्रिभुवन मोहए॥ २॥
तिहँ करि हरि. चढि आयउ सुर पर वारियो।
पुरहि प्रदच्छणदेतसु जिन जयकारियो॥
गुप्त जाय जिन जननिहिं, सुखनिद्रा रची।
मायामई शिशु राखि तौ जिन आन्यो सची॥

आन्यो सची जिनरूप निरखत नयन त्रिपति न हूजिये।
तब परम हरषित हृदय हरिने, सहस लोचन पूजिये ॥
पुनि करि प्रणाम सु प्रथम इंद्र उछंग धरि प्रभु लीनऊ।
ईशान इंद्र सुचंद्र छवि सिर छत्र प्रभुके दीनऊ ॥ ३ ॥

सनत कुमार महेंद्र, चमर दुइ ढारहीं।
शेष शक्र जयकार, सबद उच्चारहीं ॥
उच्छव सहित चतुरविध, सुर हरषित भये।
जोजन सहस निन्यानवे, गगन उलंघि गये ॥

लंघि गये सुर गिरि जहाँ पांडुक, वन विचित्र विराजहीं।
पांडुक शिला तहँ अर्द्ध चंद्र, समान मणि छवि छाजहीं ॥
जोजन पचास विशाल दुगुणी याम वसु ऊंची गनी।
वर अष्ट मंगल कनक लसनी, सिंह पीठ सुहावनी ॥ ४ ॥

रचि मणिमंडप शोभित, मध्य सिंहासनो।
थाप्यो पूरव मुख तहँ, प्रभु कमलासनो ॥
बाजहिं तालमृदंग, वेणु वीणा घने।
दुन्दुभि प्रमुख मधुर धुनि, अवर जु बाजने ॥

बाजने बाजहिं सची सब मिलि, धवल मंगल गावहीं।
पुनि करहिं नृत्य सुरांगना सब, देव कौतुक धावहीं ॥
भरि छीर सागर जल जु हाथहि हाथ सुर गिरि ल्यावहीं।
सौधर्म अरु ईसान इन्द्रसु, कलश ले प्रभु न्हावहीं ॥ ५ ॥

वदन-उदर-अवगाह, कलसगत जानिये।
एक चार वसु जोजन, मान प्रमानिये ॥

सहस अठोतर कलश प्रभुके शिर ढरे।
पुनि सिंगार प्रमुख आचार सबै करे ॥
करि प्रगट प्रभु महिमा महोच्छव आनि पुनि मातहिं दयो।
धनपतिहिं—सेवा राखि सुरपति आप सुरलोकहिं गयो ॥
जनमाभिषेक महंत महिमा, सुनत सब सुख पावहीं।
भनि 'रूपचंद्र' सुदेव जिनवर जगतमंगल गावहीं ॥ ६ ॥

——:०:——

भावार्थ—जिससमय मतिज्ञान श्रुतज्ञान और अवधिज्ञानसहित श्रीतीर्थंकर भगवानका जन्म होता है उससमय तीनों लोकों में आनंदमय क्षोभ हो जाता है उस समय प्रथम स्वर्गके इंद्रका आसन कंपायमान होता है जिससे वह जान लेता है कि भगवानका जन्म हुवा. उसी समय भवनवासी व्यतंर ज्योतिषियोंके घरोंपर भी घंटा वाजे वगेरहका शब्द हो जानेसे उन सबको भी मालूम हो जाता है कि भगवानका जन्म हुवा है। उसी समय कुवेर लाख योजनका मायामयी हाथी बनाकर लाता है उस हाथीपर इंद्र अपने परिवार सहित चढकर समस्त देवोंके साथ जय जय शब्द करते हुये नगरकी प्रदक्षिणा देता है। इंद्राणी प्रभृति घरमें जा कर भगवानकी माताको तो मायामयी निद्रासे सुला देती है और वहां पर दूसरा मायामयी बालक रख कर भगवान्‌को बाहर ले आती है। इंद्र जब भगवानका रूप देखते देखते तृप्त नहिं होता

है तो क्रमसे एक हजार नेत्र बना लेता है। पहिले स्वर्गका सौधर्म इंद्र तो भगवानको प्रणाम करके गोदमें लेलेता है और दूसरे स्वर्गका ईशान इंद्र भगवानपर छत्र लगादेता है तीसरे चौथे स्वर्गके दो इंद्र दोनों तरफसे चमर ढोलते हैं। और शेषके समस्त इंद्र जय जय शब्द करते हैं। इसप्रकार चारोंप्रकारके देव परम हर्षित होकर भगवानको उस ऐरावत हाथीपर विराजमान करके सुमेरु पर्वतपर ले जाते हैं वहां की अर्द्ध चंद्राकार पांडुक शिलापर रक्खे हुये रत्नमयी सिंहासनपर विराजमान करते हैं उस समय अनेकप्रकारके बाजे बजाते हैं इंद्राणियां मंगल गाती हैं देवांगनायें नृत्य करती हैं। देवगण हाथोंहाथ क्षीर समुद्रसे एक हजार आठ कलश भर कर लाते हैं और सौधर्म और ईशान दोनों इंद्र भगवानका अभिषेक करते हैं। पश्चात् इंद्राणी भगवानको वस्त्राभूषण पहनाती है और फिर उसी प्रकार महोत्सव करते हुये लौटते हैं। घर आकर भगवानको माताके हाथमें सौंप देते हैं और तांडव नृत्य करते हैं, फिर माताकी सेवामें कुवेरको छोडकर सब देव अपने २ स्थानको चले जाते हैं।

११. पंचपरमेष्ठीके मूल गुण।

परमेष्ठी उसे कहते हैं जो परम पदमें स्थित हो। परमेष्ठी पांच हैं—१ अरहंत २ सिद्ध ३ आचार्य ४ उपाध्याय और ५ सर्व साधु।

अरहंतपरमेष्ठीके गुण।

अरहंत उन्हे कहते हैं जिन्होंके ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, और अंतराय ये चार घातिया कर्म नष्ट होगये हों और जिनमें नीचे लिखे ४६ गुण हों और अठारह दोष न हों।

दोहा।

चौतीसों अतिशय सहित, प्रातिहार्य पुनि आठ।
अनंत चतुष्टय गुण सहित, ये छियालीसों पाठ॥ १॥

अर्थात् ३४ अतिशय ८ प्रातिहार्य और ४ अनंत चतुष्टय ये सब ४६ गुण होते हैं। चौतीस अतिशयोंमेंसे दश अतिशय तो जन्मके होते हैं, दश केवलज्ञान होने पर होते हैं और चौदह अतिशय भी केवलज्ञान हुये बाद होते हैं परंतु देवोंके द्वारा किये हुये होते हैं।

जन्मके दश अतिशय।

अतिशय रूप सुगंध तन, नाहिं पसेव निहार।
प्रिय हित वचन अतुल्य बल, रुधिर श्वेत आकार॥
लच्छन सहस रु आठ तन, समचतुष्क संठान।
वज्र वृषभ नाराच जुत, ये जन्मत दश जान॥ २॥

अत्यंत सुन्दर शरीर १, अत्यन्त सुगन्धमय शरीर २, पसेवरहित शरीर ३, मलमूत्ररहित शरीर ४, हित मित प्रिय-

वचन बोलना ५, अतुल्य बल ६, दूधके समान सफेद रुधिर ७, शरीरमें एक हजार आठ लक्षण ८, समचतुरस्र संस्थान ९, और वज्र वृषभनाराच संहनन ये दश अतिशय अरहन्त भगवानके जन्मसे ही होते हैं।

केवलज्ञानके दश अतिशय।

जोजन शत इकमें सुभिख, गगनगमन मुख चार।
नहि अदया उपसर्ग नहिं, नाहीं कवलाहार ॥ ४ ॥
सब विद्या ईसरपनों, नाहिं बढै नखकेश।
अनमिष दृग छायारहित, दश केवलके वेश ॥ ५ ॥

एकसौ योजनमें सुभिक्षता अर्थात् जिस स्थानमें केवली रहैं या जांय उनके चारों तरफ सो योजनमें सुभिक्ष होगा अकाल नहिं होगा १ आकाशमें गमन होना २ भगवानके चारों ओर मुख दीखना ३ अदयाका सौ योजनमें (हिंसाका) अभाव ४ किसीको उपसर्ग होनेका अभाव होना ५ भगवानके कवल (ग्रास लेकर) आहारका न होना ६ समस्त विद्याओंका ईश्वरपना ७ नख केशों का न बढना ८ नेत्रोंकी पलकें न लगना ९ और शरीरकी छाया न पडना १० ये दश अतिशय केवलज्ञान होनेके पीछे होते हैं॥

देवकृत चौदह अतिशय।

देव रचित हैं चार दश, अर्द्ध मागधी भाष।
आपस मांही मित्रता, निर्मल दिश आकाश॥ ६ ॥

होत फूल फल ऋतु सबै, पृथ्वी काच समान।
चरन कमल तल कमल है, नभतैं जय जय बान ॥७॥
मंद सुगंध बयार पुनि, गंधोदककी वृष्टि।
भूमि विषै कंटक नहीं, हर्षमयी सब सृष्टि ॥ ८ ॥
धर्म चक्र आगें रहै, पुनि वसु मंगल सार।
अतिशय श्री अरहंतके, ये चौंतीस प्रकार ॥ ९ ॥

भगवानकी अर्द्धमागधी (जिसको सब जीव समझ लें) भाषाका होना १ समस्त जीवोंमें परस्पर मित्रताका होना २ दिशाओंका निर्मल होना ३ आकाशका निर्मल होना ४ सब ऋतुओंके फल फूल धान्यादिकका एकही समय फलना ५ एक योजन तककी पृथ्वीका दर्पणकी तरह निर्मल होना ६, चलते समय भगवानके चरण कमलोंके तले सोनेके कमलोंका होना ७, आकाशमें जय जय ध्वनिका होना ८, मंद सुगंधित पवनका चलना ९, सुगंधमय जलकी वृष्टि होना १०, पवन कुमार देवोंके द्वारा भूमिका कंटकरहित होना ११, समस्त जीवोंका आनंदमय होना १२, भगवानके आगे धर्म चक्रका चलना १३, छत्र चमर धुजा, घंटा आदि आठ मंगल द्रव्योंका साथ रहना १४, इसप्रकार देवकृत चौदह अतिशय मिलानेसे समस्त अतिशय चौंतीस प्रकार होते हैं।

अष्ट प्रातिहार्य द्रव्य।

तरु अशोकके निकटमें, सिंहासन छविदार।
तीन छत्र सिर पर लसैं, भामण्डल पिछवार ॥ १० ॥

दिव्य ध्वनि मुखतैं खिरै, पुष्प वृष्टि सुर होय।
ढोरैं चौसठि चमर जख, बाजै दुंदुभि जोय ॥ ११ ॥

अशोक वृक्षका होना, रत्नमय सिंहासन, शिरपर तीन छत्र, पीठ पीछे भामंडल, दिव्य ध्वनिका होना, देवोंके द्वारा फूलोंकी वर्षा होना, यक्ष देवोंके द्वारा चौसठ चमरोंका ढुलना और दुंदुभि बाजोंका बजना ये आठ प्रातिहार्य हैं ॥

अनंत चतुष्टय।

ज्ञान अनन्त अनन्त सुख, दर्श अनंत प्रमान।
बल अनंत अरहंत सो, इष्ट देव पहिचान ॥ १२ ॥

भगवानके अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, और अनन्त बल होता है। इन्हें अनन्त चतुष्टय कहते हैं। इसप्रकार ३४ अतिशय ८ प्रातिहार्य और ४ अनन्त चतुष्टय मिलाकर अरहन्त भगवानके कुल ४६ गुण होते हैं ॥ १२ ॥

अठारह दोष।

जन्म जरा तिरखा क्षुधा, विस्मय अरु रति खेद।
रोग शोक मद मोह भय, निद्रा चिंता स्वेद ॥ १३ ॥
राग द्वेष अरु मरन जुत, ये अष्टादश दोष।
नाहिं होत अरहन्तके, सो छवि लायक मोख ॥१४॥

अरहन्त भगवानके इस दोहेमें लिखे हुये १८ दोष नहीं होते इसी कारण भगवानको वीतराग निर्दोष कहते हैं॥१३-१४॥

सिद्ध परमेष्ठीके गुण।

सिद्ध उन्हें कहते हैं जो आठो कर्मोंका नाश करके संसारके दुःखोंसे हमेशहके लिये मुक्त हो गये हैं उनके नीचे लिखे आठ गुण होते हैं।

सोरठा।

समकित दर्शन ज्ञान, अगुरु लघू अवगाहना।
सूक्ष्म वीरज वान, निराबाध गुण सिद्धके॥ १५॥

सम्यक्त्व, दर्शन, ज्ञान, अगुरुलघुत्व, अवगाहनत्व, सूक्ष्मत्व, अनन्त वीर्य, और अव्याबाधत्व ये आठ सिद्धोंके गुण होते हैं। इनका अर्थ इस पुस्तकके पढनेवाले विद्यार्थियोंकी समझमें आना कठिन है इस कारण नहिं लिखा। विद्यार्थियोंको इन आठ गुणोंके नाममात्र याद कर लेने चाहिये॥ १५॥

आचार्य परमेष्ठीके गुण।

आचार्य उन्हें कहते हैं जो कि मुनियोंके संघके अधिपति हों, और संघके मुनियोंको दीक्षा (शिक्षा) प्रायश्चित्त (दण्ड) वगेरह देते रहते हैं इनके आगे लिखे ३६ गुण होते हैं,--

द्वादशतप दश धर्म जुत, पालहिं पंचाचार।
षट् आवशिक त्रिगुप्ति गुन, आचारज पद सार॥ १६॥

तप १२, धर्म १०, आचार ५, आवश्यक ६, गुप्ति ३, कुल ३६ गुण आचार्यमें होते हैं।

बारह तपोंके नाम।

अनसन ऊनोदर करै, व्रत संख्या रस छोर।
विविक्त शयन आसन धरै, काय कलेश सुठोर ॥ १७॥
प्रायश्चित धर विनय जुत, वैयावृत स्वाध्याय।
पुनि उत्सर्ग विचारकै, धरै ध्यान मन लाय ॥ १८ ॥

अनसन तप (भोजनका त्याग) १, ऊनोदर तप (भूखसे कम खाना) २, व्रतपरिसंख्यान (भोजनको जाते समय घर वगैरहके नियम करना) ३, रसपरित्याग (छहों रस या एक दो चार रसका त्यागना) ४, विविक्तशय्यासन (एकांतमें सोना बैठना) ५, काय क्लेश (शरीरको कष्ट देना) ६ प्रायश्चित्त [दोषोंका दंड लेना] ७, रत्नत्रय व रत्नत्रयधारियोंका विनय करना ८, वैयावृत्त (रोगी या वृद्ध मुनियोंकी सेवा करना) ९, स्वाध्याय करना १०, व्युत्सर्ग (शरीरसे ममत्व छोडना) ११, और ध्यान करना ये १२ तप हैं। इनमेंसे पहिलेके ६ बाह्यतप हैं पीछेके ६ अभ्यंतर तप हैं ॥ १७—१८ ॥

दश धर्मके नाम।

छिमा मारदव आरजव, सत्य वचन चित पाग।
संयम तप त्यागी सरव, आर्किंचन तिय त्याग ॥ १९ ॥

उत्तम क्षमा १, उत्तम मार्दव (मान न करना) २, उत्तम आर्जव (कपट न करना) ३ उत्तम शौच (लोभ न करना अंतःकरणको शुद्ध रखना) ४, उत्तम सत्य ५, उत्तम संयम (छह कायके जीवोंकी रक्षा करना व इन्द्रिय मनको वशमें रखना) ६, उत्तम तप ७, उत्तम त्याग (दान करना) ८, उत्तम आकिंचन (२४ परिग्रहका त्याग करना) ९, और उत्तम ब्रह्मचर्य पालना १० ये दश उत्तम धर्म हैं।

छह आवश्यक।

समता धरि वंदन करै, नाना थुती बनाय।
प्रतिक्रमण स्वाध्याय जुत, कायोत्सर्ग लगाय॥ २०॥

सब जीवोंसे समता रखना १, वंदना (हाथ जोड मस्तकसे लगाकर नमस्कार करना) २, परमेष्ठीकी स्तुति करना ३, प्रतिक्रमण करना (लगे हुये दोषों पर पश्चाताप करना) ४, स्वाध्याय करना ५, कायोत्सर्ग ध्यान करना ६ ये षट् आवश्यक हैं॥ २०॥

पांच आचार और तीन गुप्ति।

दर्शन ज्ञान चरित्र तप, वीरज पंचाचार।
गोपै मन वच कायको, गिन छतीस गुनसार॥ २१॥

दर्शनाचार १, ज्ञानाचार २, चारित्राचार ३, तपाचार ४, और वीर्याचार ये ५ तो आचार हैं और मनोगुप्ति, (मनको वशमें रखना,) वचनगुप्ति (वचनको वशमें रखना)

२, और कायगुप्ति (शरीरको वशमें रखना) ये तीनगुप्ति हैं। इन सबको मिलानेसे आचार्य परमेष्ठीके ३६ गुण हो जाते हैं ॥ २१ ॥

उपाध्याय परमेष्ठीके २५ मूल गुण ।

उपाध्याय उन्हें कहते हैं जो ग्यारह अंग चौदह पूर्वके पाठी हों। ये स्वयं पढते वा अन्य मुनियोंको पढाते हैं। इनके ग्यारह अंग और चौदह पूर्वका पढना ही २५ मूलगुण हैं ॥

ग्यारह अंगोंके नाम ।

प्रथमहि आचारांग गनि, दूजो सूत्रकृतांग ।
ठाण अंग तीजो सुभग, चौथो समवायांग ॥ २१ ॥
व्याख्या पण्णति पांचमो, ज्ञातृ कथा षट आन ।
पुनि उपासकाध्ययन है, अंतःकृत दश ठान॥ २२ ॥
अनुत्तरण उत्पाद दश, सूत्र विपाक पिछान ।
बहुरि प्रश्न व्याकरण जुत, ग्यारह अंग प्रमान ॥ २३ ॥

आचारांग १, सूत्रकृतांग २, स्थानांग ३, व्याख्याप्रज्ञप्ति अंग ५, ज्ञातृकथांग ६, उपासकाध्ययनांग ७, अंतःकृत दशांग ८, अनुत्तरोत्पादक दशांग ९, प्रश्न व्याकरणांग १० और विपाक सूत्रांग ११ ये ग्यारह अंग हैं॥ २३ ॥

चौदह पूर्वोंके नाम ।

उत्पादपूर्व अग्रायणी, तीजो वीरज वाद ।
अस्ति नास्ति प्रवाद पुनि, पंचम ज्ञान प्रवाद ॥ २४ ॥

छट्ठो कर्म प्रवाद है, सत्प्रवाद पहिचान ।
अष्टम आत्म प्रवादपुनि, नवमो प्रत्याख्यान ॥ २५ ॥
विद्यानुवाद पूरव दशम, पूर्व कल्याण महन्त ।
प्राणवाद किरिया वहुल, लोक विंदु है अन्त ॥ २६ ॥

उत्पाद पूर्व १, अग्रायणी पूर्व २ वीर्यानुवाद पूर्व ३, अस्ति नास्ति प्रवाद पूर्व ४, ज्ञान प्रवाद पूर्व ५, कर्म प्रवाद पूर्व ६, सत्यवाद पूर्व ७, आत्मप्रवाद पूर्व ८, प्रत्याख्यान पूर्व ९, विद्यानुवाद पूर्व ११, कल्याणानुवाद १२, प्राणानुवाद पूर्व १३, लोकविंदु पूर्व १४ ये चौदह पूर्व हैं ॥

सर्व साधुओंके २८ मूल गुण ।

साधु उन्हें कहते हैं जिनमें नीचे लिखे हुये २८ मूलगुण हों वे मुनि तपस्वी कहलाते हैं । उनके पास कुछ भी परिग्रह नहीं होता और न वे आरंभ करते हैं । वे सदा ज्ञान ध्यान तपमें लवलीन रहते हैं ।

पांच महाव्रत ।

हिंसा अनृत तसकरी, अब्रह्म परिग्रह पाप ।
मन वच तन तैं त्यागवो, पंच महाव्रत थाप ॥ २७ ॥

अहिंसा महाव्रत १ सत्य महाव्रत २ अचौर्य महाव्रत ३ ब्रह्मचर्य महाव्रत ४ परिग्रह त्याग महाव्रत ५ ॥

पांच समिति ।

ईर्या भाषा एषणा, पुनि क्षेपण आदान ।
प्रतिष्ठापना जुत क्रिया, पांचों समिति विधान ॥ २८ ॥

ईर्या समिति (आलस्य रहित चार हाथ आगे जमीन देखकर चलना) १, भाषा समिति (हित मित प्रिय वचन बोलना) २, एषणा समिति (दिनमें एकवार शुद्ध निर्दोष आहार लेना) ३, आदाननिक्षेपण समिति (अपने पास के शास्त्र, पीछी, कमंडलु आदिको भूमि देखकर सावधानीसे धरना वा उठाना) ४, प्रतिष्ठापनसमिति (जीव जन्तुरहित साफ जमीन देखकर मल मूत्रादि क्षेपण करना) ५, ये पांच समिति हैं ॥ २८ ॥

शेष गुण दोहा ।

सपरस रसना नासिका, नयन श्रोत्रका रोध ।
षट आवशि मंजन तजन, शयन भूमिका शोध ॥ २९ ॥
वस्त्र त्याग कच लुञ्च अरु लघु भोजन इक वार ।
दाँतण मुखमें ना करैं, ठाडे लेंहि अहार ॥ ३० ॥

स्पर्श १, रसना २, घ्राण ३ चक्षु ४, श्रोत्र ५, इन पांचों इंद्रियोंको वशमें करना, समता ६, वंदना ७, स्तुति ८, प्रतिक्रमण ९, स्वाध्याय १०, कायोत्सर्ग ११, स्नानका त्याग १२, स्वच्छ भूमि पर सोना १३, वस्त्र त्याग १४, केश लोंच करना १५, एक बार खडे भोजन करना १६,

दांतन न करना १७, खडे आहार लेना १८, इस प्रकारसे ये १८ मूल गुण सर्व सामान्य मुनियोंके अर्थात् आचार्य उपाध्यायादि समस्त साधुओंके होते हैं। मुनिजन इनका पालन करते हैं ॥ २० ॥

---:०:---

१२. दर्शन प्रतिज्ञाकी कहानी।

---:०:---

किसी समय एक नगरमें एक प्रमादी शेठ रहता था। उस शहरमें रहनेवाले पंडितों व त्यागी महात्माओंने कितनी ही बार उपदेश दिया कि तुम भगवानके नित्य दर्शन करनेकी आखडी ले लो परन्तु उसने आखडी नहीं ली. वह कहता कि मैंने आखडी ले ली और कोई दिन दर्शन करना भूलगया या मंदिर दूर है किसी दिन प्रमाद आ गया तो दर्शन नहिं करनेसे आखडी भंग हो जायगी आखडी भंगका बडा पाप है इसलिये आखडी तो मैं किसी भी तरह की लेता नहीं, हां! आपकी आज्ञाका जहांतक बना पालन करूंगा परंतु वह सेठ दो चार दिन तो मंदिरजी जाता फिर प्रमाद कर जाता। अर्थात् दर्शन करना छोड देता।

एक दिन एक ब्रह्मचारीजी महाराज आये सबकी देखा देखी सेठने भी उनको निमंत्रण दे दिया और ब्रह्मचारीजी को अपने घर पर जीमनेको ले तो गये परंतु उन ब्रह्मचारी जी महाराजका नियम था कि वे निमंत्रण करनेवाले गृह-

थीको भोजनसे पहिले कुछ न कुछ आखड़ी विना दिये जीमते ही नहीं थे सो शेठजीको भी उन्होंने कहा कि पहिले कोई प्रतिज्ञा ले लो तो हम जीमनेको बैठें नहिं तो हम कदापि जीमेंगे नहीं, यह हमारा नियम है। सो जो कुछ भी हो एक आखडी ग्रहण करना चाहिये। सेठजी बडे चक्करमें पड गये, विना आखडी लिये साधुको फिरा देते हैं तो शहरमें निंदा होती है। लाचार सेठने कहा कि मुझे कितने ही त्यागी महात्मा पंडितोंने आखडी देनेका आग्रह किया परंतु मैंने आजतक कोई आखडी वा प्रतिज्ञा ग्रहण नहीं की। ब्रह्मचारीजीने पूछा क्या भगवानके नित्य दर्शन करनेकी भी आखडी नहीं ली? सेठने कहा कि- हमारे घर या दुकान से मंदिरजी वहुत दूर है दर्शन करके आनेमें आधा घंटा लग जाता है। दुकान पर काम बहुत है सो ऐसी आखडी मेरेसे कदापि नहीं पल सकती। तब ब्रह्मचारीजीने कहा कि तुमारी दुकानके सामने क्या है? सेठने कहा कि एक कुमारका घर है वह सवेरेसे बरतन बनाया करता है। ब्रह्मचारीजीने कहा कि अच्छा उस कुमारको तौ रोज देखते हो यही आखडी ले लो कि- कुमारका मुह देखे विना कभी अन्न जल ग्रहण नहीं करूंगा। तब शेठने कहा कि यह आखडी तौ मैं ले सकता हूं। परंतु इससे लाभ क्या होगा। ब्रह्मचारीजीने कहा-इससे भी बहुत कुछ लाभ होगा तुम प्रतिज्ञा तो ले लो इस प्रतिज्ञासे लाभ होगा तौ फिर भगवानके नित्य

दर्शन पूजन करनेकी भी प्रतिज्ञा लेलोगे। शेठजीने कुमारके दर्शनकी प्रतिज्ञा लेली। और ब्रह्मचारीजी उनके यहां जीम कर चले गये।

तीन चार महीने तक तौ दुकान खोलते ही सेठजी उस कुमारको नित्य देख लिया करते थे कोई विघ्न नहिं पडा परंतु दैव योगसे एक दिन कुमार सेठजीकी दुकान खुलनेसे पहिले ही गांव बाहर मिट्टी लेनेको चला गया। उसने जिस खंदकमेंसे मिट्टी खोदना प्रारम्भ किया दैवयोगसे पुराने जमानेका किसी धनाढ्यका गढा हुवा मोहरोंसे भरा हुवा एककलस निकला उसको ढकन उघाड कर देखा तौ विचारमें पड गया।

इधर सेठजीको आज जल्दी ही भोजन करके जाना था परंतु दुकान पर जाकर देखा तौ कुमारके दर्शन नहिं हुये। कुमारीसे पूछने पर मालूम हुवा वह मिट्टी लाने को गया है, शेठजी अपने नित्य नियमका लिहाज रखनेके लिये खंदकके पास उसी समय पहुंचे कि जिस समय कुमार मोहरें पाकर इधर उधर देखता था कि– कोई देखता तौ नहीं है। उसकी दृष्टिमें शेठ ही पडे तो वह डरा और विचार किया कि सेठको सामिल करनेसे ही यह धन पचैगा ऐसा विचार शेठको हाथके इशारेसे अपने पास बुलाने लगा। परन्तु शेठ को जल्दी जानेका काम था सो वह बोला कि 'देख लिया देख लिया' अर्थात् तेरा मुह मैंने देख लिया अब जरूरत

नहीं तेरे पास आनेकी, परंतु कुमारने समझा कि-मोहरोंसे भरा कलशा देख लिया। सो अब यह छिप नहीं सकता। सो वह कलसा बोरेमें भरकर उठा लाया और शेठजीके घर पर जाकर शेठजीके पावोंमें कलशा रखकर प्रार्थना करने लगा कि-यह कलशा आपकी सेवामें है। खंदकमें खोदते समय मिला है आपने देख लिया था वैसा ही यह हाजिर है आपहीका है इस दासको जो इच्छा हो सो इसमेंसे देदें। सब हाल समझकर १०० मोहरें उसको देकर बाकी सब रखलीं। कुमार भी खुश होकर चला गया।

शेठने मनमें विचारा कि यह सब कुमारके मुंह देखने की प्रतिज्ञाका ही फल है। यदि इसी प्रकार भगवानके नित्य दर्शन पूजन करनेकी प्रतिज्ञा लेता तो न मालूम आज तक कितना लाभ वा पुण्य होता ऐसा समझकर उसी दिनसे नित्य दर्शनकी प्रतिज्ञा कर ली उसी दिनसे शेठके यहां धन और सुख शांतिकी दिन दूनी रात चौगुणी वृद्धि होने लगी।

इस कहानीका मतलब यही है कि विना दृढ प्रतिज्ञा किये कोई भी कार्य फलदायक नहिं होता इसलिये प्रतिज्ञाबद्ध होकर सब कार्य करना चाहिये।

१३. भूधर जैन नीत्युपदेशसंग्रह प्रथम भाग.

-:०:-

जिनवाणी और मिथ्यावाणीमें फेर ।

कवित्त मनहर ।

कैसें करि केतकी कनेर एक कही जाय, आक[1] दूध गाय दूध अंतर घनेर है । पीरी होत [2]रीरी पैं न रीसैं[3] करै कंचन की, कहां कागवानी कहां कोयलकी टेर है ॥ कहां भान भारो कहां आगियैा[4] विचारो कहां, पूनौको उजारो कहां मावस[5] अँधेर है । पच्छ छोरि पारखी निहारैं[6] देख नीके करि, जैन बैन औरँ बैन[7] इतनौ ही फेर है ॥ १ ॥

वैराग्य भावना ।

कब गृह वाससौं उदास होय वन सेऊं, [8]वेऊं निजरूप गति रोकूं मनै[9] करीकी । रहि हौं अडोल एक आसन अचल अंग, सहिहौं परीसा शीतघाम मेघ झरीकी ॥ सारँगसमाज[10] खाज[11] कबधौं खुजै है आनि, ध्यान दलजोर जीतूं सेनामोह अरीकी ।

---

१ "आक दुध सुरहीको" ऐसा भी पाठ है । २ पीतल । ३ हिर्स—बराबरी । ४ खद्योत पटबीजना । ५ अमावस्याका अंधेरा । ६ "निहारो नेक नीके कर" ऐसा भी पाठ है । ७ अन्य धर्म वालोंके वचनोंमें । ८ जानू-अनुभवूं । ९ मनरूपी हाथीकी । १० हिरनोंके समूह । ११ खुजली ।

एकल विहारी जथाजात लिंग धारी कब, होऊं इच्छाचारी वलिहारी हौं वा घरीकी ॥ २ ॥

राग और वैराग्यका अंतर।

राग उदै भोगभाव लागत सुहावनेसे, विनाराग ऐसे लागैं जैसैं नाग कारे हैं। राग ही सौं पाग रहै तनमें सदीव जीव, राग गये आवत गिलानि होत न्यारे हैं॥ रागसौं जगतरीति झूंठी सब सांची जानै, राग मिटे सूझत असार खेल सारे हैं। रागी विनरागीके विचारमें बडोई भेद, जैसे "भटा[2] पच काहू काहूको वयारे" हैं ॥ ३ ॥

भोग निषेध।

मत्तगयंद सवैया।

तू नित चाहत भोग नये नर, पूरव पुन्य विना किम पै है।
कर्म संजोग मिलै कहिं जोग, गहै तब रोग न भोग सकै है॥
जो दिन चारको ब्योंत बन्यौ कहूं, तौ परि दुर्गतिमें पछतै है।
यौं हित यार सलाह यही कि, "गई कर जाहु" निवाह न ह्वै है॥

देहका स्वरूप।

माता पिता रज वीरजसौं, उपजी सब सात कुधात भरी है
माखिनके[3] पर माफिक बाहर, चामके बेठन बेढ धरी है॥

---

१ नग्न मुद्राका धारक। २ भटा अर्थात् बैंगन किसी २ को तो पथ्य होते हैं और किसी २ को वादी करनेवाले हानिकर होते हैं। ३ मक्खियों के परकी समान पतले चमडेके वेष्टनसे ढकी हुई।

नाहिं तो आय लगैं अब ही, बक[2] वायस[3] जीव बचै न घरी है ।
देह दशा यह दीखत भ्रात, घिनात नहीं किन बुद्धि हरी है ॥

संसारका स्वरूप और समयकी वहुमूल्यता ।

कवित्त मनहर ।

काहूघर पुत्र जायो काहूके वियोग आयो, काहू राग रंग काहू रोआ रोई करी है । जहां भान ऊगत उछाह गीत देखे जात, सांजसमैं ताही थान हाय हाय परी है ॥ ऐसी जगरीतिको न देख भयभीत होय, हाहा नर मूढ़ तेरी मति कौन हरी है । मानुष जनम पाय सोवत विहाय जाय, खोवत करोरनकी एक एक घरी है ॥ ६ ॥

सोरठा ।

कर कर जिनगुन पाठ, जात अकारथ रे जिया ।
आठ पहरमें साठ, घरी घनेरे मोलकी ॥ ७ ॥
कानी कोडी काज, कोरनको लिख देत खतैं ।
ऐसे मूरखराज, जगवासी जिय देखिये ॥ ८ ॥

दोहा ।

कानी कौडी विषय सुख, भवदुख करत अपार ।
विना दिये नहिं छूटि हैं, लेशर्क दाम उधार ॥ ९ ॥

---

२ बगुले । ३ कौवे । ४ फूटी कौडीके लिये जैसे कोई करोडों रुपयोंका, । ५ तमस्सुक (चिट्ठी) लिख देवै । ६ लेशमात्र भी ।

शिक्षा । छप्पय ।

दश[1] दिन विषय विनोद, फेर बहु विपति परंपर ।
अशुचि गेह यह देह, नेह जानत न आप जरे[2] ॥
मित्र बंधु-सनमंध और, परिजन जे अंगी[3] ।
अरे अंध सब धंध, जानि स्वारथके संगी ॥
परहित अकाज आपनो न करि, मूढराज अब समुझ उर ।
तजि लोकलाज निज काज करि, आज दाँव[4] है कहत गुर ॥

कवित मनहर ।

जोलौं देह तेरी काहू रोगसों न घेरी जोलौं, जरा नाहिं नेरी जासौं पराधीन परि है । जोलौं जम नामा वैरी, देय न दमामा[5] जोलौं, माने कानैं[6] रामा[7] बुद्धि जाय न बिगरि है ॥ तोलौं मित्र मेरे निज कारज सँवार लेरे, पौरुष थकेंगे, फेर पीछै कहा करि है । अहो आग आयें जब झौंपरी जरन लागी, कुआके खुदायें तब कौन काज सरिहै ॥ ११ ॥ सौ बरस आयु ताका लेखा करि देखा सब, आधी तौ अकारथ ही सोवत विहाय रे । आधीमें अनेक रोग बाल वृद्ध दशा भोग, और हु संजोग माहि केती बीत जाय रे ॥ बाकी अब कहा रही ताहि तू विचार सही, कारजकी बात

१ 'दिन-द्वय' ऐसा भी पाठ है । २ जड अचेतन । ३ पुत्र वा नातेदार । ४ मौका–अवसर । ५ जबतक यमनामा वैरी नगारे पर चोट दे कर सचेत न करे । ६ आज्ञा । ७ स्त्री ।

यही नीके मन लाव रे। खातिरमें[1] आवै तो खलासी[2] कर डाल[3] नहिं काल–घाल[4] परै है अचानक ही आय रे॥ १२॥

——:o:——

१४। नित्य नियम पूजा भाषा।

——:o:——

अडिल्ल।

प्रथम देव अरहंत सुश्रुत सिद्धांत जू।
गुरु निर्ग्रंथ महंत मुकतिपुर पंथ जू॥
तीन रतन जग माहिं सो ये भवि ध्याइये।
तिनकी भक्तिप्रसाद, परम पद पाइये॥ १॥

दोहा।

पूजूं पद अरहंतके, पूजूं गुरुपद सार।
पूजूं देवी सरसुती, नित प्रति अष्टप्रकार॥ २॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह ! अत्र अवतर अवतर। संवौषट्।
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः।
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह ! अत्र मम संनिहितो भवभव वषट्।

गीता।

सुरपति उरग नरनाथ तिनकर वंदनीक सुपदप्रभा।
अति शोभनीक सुवर्ण उज्जल, देख छवि मोहित सभा॥

---

१ यदि यह बात तेरी समझमें आ जावे तो। २ छुटकारा। ३ हालही, इसी वक्त। ४ यमराजका आक्रमण वा डांका।

वर नीर छीर समुद्र घट भरि, अग्र तसु बहुविधि नचूं।
अरहंत श्रुत सिद्धांत, गुरु निरग्रंथ नित पूजा रचूं ॥ १ ॥
मलिन वस्तु हर लेत सब, जलस्वभाव मलछीन।
जासों पूजों परमपद, देवशास्त्र गुरु तीन ॥ १ ॥
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥
जे त्रिजग उदरमझार प्राणी, तपत अति दुद्धर खरे।
तिन अहितहरन सु वचन जिनके, परमशीतलता भरे ॥
तस भ्रमर लोभित घ्राण पावन सरस चंदन घसि सचूं।
अरहंत श्रुत सिद्धांत गुरु निरग्रंथ, नित पूजा रचूं ॥ २ ॥
चदंन शीतलता करै, तपतवस्तु परवीन।
जासौं पूजों परम पद देव शास्त्र गुरु तीन ॥
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ॥ २ ॥
यह भवसमुद्र अपार तारण,—के निमित्त सुविधि ठई।
अति दृढ परम पावन जथारथ, भक्तिवर नौका सही ॥
उज्जल अखंडित सालि तंदुल, पुंज धरि त्रय गुण जचूं।
अरहंत श्रुत सिद्धांत गुरु, निरग्रंथ नित पूजा रचूं ॥ ३ ॥
तंदुल सालि सुगंध अति, परम अखंडित बीन।
जासौं पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥ ३ ॥
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा
(यहांपर अक्षतोंके तीन पुंज ही करने चाहिये अधिक नहीं)

जे विनयवंत सुभव्य उर अंवुज प्रकाशन भान हैं।
जे एक मुख चारित्र भाषहिं, त्रिजगमांहि प्रधान हैं॥
लहि कुंद कमलादिक पहुप भवभव कुवेदनसौं वचूं।
अरहन्त श्रुत सिद्धांत गुरु निरग्रंथ नितपूजा रचूं॥ ४॥
विविध भांति परिमल सुमन, भ्रमर जास आधीन।
जासौं पूजौं परमपद, देवशास्त्र गुरु तीन॥ ४॥
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः कामवाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा॥ ४॥

अति सवलमदकंदर्प जाको, छुधा उरग अमान है।
दुस्सह भयानक तास नाशनकौं सुगरुड समान है॥
उत्तम छहों रसयुक्त नित नैवेद्यकरि घृतमें पचूं।
अरहंत श्रुत सिद्धांत गुरु निरग्रंथ नितपूजा रचूं॥ ५॥
नानाविध संयुक्तरस, व्यंजनसरस नवीन।
जासौं पूजों परमपद, देवशास्त्रगुरु तीन॥ ५॥
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा॥ ५॥

जे त्रिजग उद्यम नाश कीने, मोहतिमिरमहावली।
तिहि कर्म घाती ज्ञान दीप प्रकाश जोति प्रभावली॥
इह भाँति दीप प्रजाल कंचनके सुभाजनमें पचं।
अरहंत श्रुत सिद्धांत गुरु निरग्रंथ नितपूजा रचूं॥ ६॥
स्वपर प्रकाशक ज्योति अति, दीपक तम करि हीन।
जासौं पूजौं परमपद, देवशास्त्रगुरु तीन॥ ६॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ६ ॥

जो कर्म-ईंधन दहन अग्निसमूह सम उद्धत लसैं।
वरधूप तासु सुगंधता करि, सकल परिमलता हँसैं॥
इह भांति धूप चढाय नित, भवज्वलन माहि नहीं पचूं।
अरहंत श्रुत सिद्धांत गुरु निरग्रंथ नित पूजा रचूं॥ ७॥
अग्निमांहि परिमलदहन, चन्दनादि गुण लीन।
जासौं पूजौं परमपद, देवशास्त्रगुरु तीन॥ ७॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्योऽष्टकर्मविनाशनाय धूपं निर्वपामीतिः स्वाहा ॥ ७ ॥

लोचन सुरसना घ्रान उर, उत्साहके करतार हैं।
मोपै न उपमा जाय वरणी, सकलफल गुणसार हैं॥
सो फल चढावत अर्थपूरण, सकल अम्रतरस सचूं।
अरहंत श्रुत सिद्धांत गुरु, निरग्रंथ नितपूजा रचूं॥ ८॥
जो प्रधान फल फलविषै, पंचकरण रस लीन।
जासौं पूजौं परमपद, देवशास्त्रगुरु तीन॥ ८॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ८ ॥

जल परम उज्जल गंध अक्षत, पुष्प चरु दीपक धरूं।
वरधूप निर्मल फल विविध, बहु जनमके पातक हरूं॥
यह भांति अर्घ चढाय नित भवि, करत शिव पंकति मचूं।
अरहंत श्रुत सिद्धांत गुरु निरग्रंथ नितपूजा रचूं॥ ९॥

वसुविध अर्घ संजोयकैं, अति उछाह मन कीन।
जासौं पूजौं परमपद, देवशास्त्र गुरु तीन॥ ९॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा॥ ९॥

——:०:——

अथ जयमाला।

देव शास्त्र गुरु रतन शुभ, तीन रतन करतार।
भिन्न २ कहुं आरती, अल्प सुगुण विस्तार॥ १॥

चउ कर्मकी त्रेसठि प्रकृति नाश। जीते अष्टादश दोष राशि।
जे परम सुगुण हैं नन्त धीर। कहवतके छ्यालिस गुण गंभीर॥
शुभ समवसरन शोभा अपार। शत इंद्र नमत कर शीस धार।
देवाधिदेव अरहंत देव। बन्दौं मन वच तन कर सुसेव॥२॥
जिनकी धुनि है ओंकार रूप। निर अक्षरमय महिमा अनूप।
दश अष्ट महाभाषा समेत। लघुभाषा सात शतक सुचेत॥
सो स्याद्वादमय सप्त भंग। गण धर गूथे बारह सुअंग।
रवि शशि न हरै सो तम हराय, सो शास्त्र नमौं बहु प्रीति लाय
गुरु आचारज उवझाय साध, तन नगन रतन त्रय निधि अगाध
संसार देह वैराग्य धार, निरवांछि तपैं शिव पद निहार॥
गुण छत्तिस पच्चिस आठ वीस, भवतारन तरन जिहाज ईश
गुरुकी महिमा बरनी न जाय। गुरु नाम जपौं मन वचन काय

सोरठा।

कीजे शक्ति प्रमान, शक्ति विना सरधा धरै।
'द्यानत' सरधावान, अजर अमर पद भोगवै ॥ ८ ॥

विंशति विद्यमान तीर्थंकरोंका अर्घ।

उदकचंदनतंदुलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घकैः।
धवलमंगलगानरवाकुले जिनगृहे जिनराजमहं यजे ॥

ॐ ह्रीं सीमंधरयुगमंधरबाहुसुबाहुसंजातस्वयंप्रभवृषभानन-अनन्तवीर्यसूरप्रभविशालकीर्तिवज्रधरचन्द्राननचन्द्रबाहुभुजंगमई-श्वरनेमिप्रभवीरसेनमहाभद्रदेवयशअजितवीर्येति विंशतिविद्यमान-तीर्थंकरेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

अकृत्रिम चैत्यालयोंका अर्घ।

कृत्याकृत्रिमचारुचैत्यनिलयान्नित्यं त्रिलोकींगतान्।
वंदे भावनव्यंतरद्युतिवरस्वर्गामरावासगान् ॥
सद्गंधाक्षतपुष्पदामचरुकैः सद्दीपधूपैः फलैर्।
द्रव्यैर्नीरमुखैर्यजामि सततं दुष्कर्मणां शांतये ॥ २ ॥

ओं ह्रीं कृत्रिमाकृत्रिमचैत्यालयसंबंधिजिनबिंबेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ २ ॥

---

१ इस श्लोकका जो पाठ आराकी प्राचीन प्रतिमें मिला है वही हमने लगाया है हमारी समझमें यही पाठ शुद्ध प्रतीत हुवा है।

सिद्धनका अर्घ।

गंधाढ्यं सुपयो मधुव्रतगणैः संगं वरं चंदनं
पुष्पौघं विमलं सदक्षतचयं रम्यं चरु दीपकं।
धूपं गंधयुतं ददामि विविधं श्रेष्ठं फलं लब्धये
सिद्धानां युगपत्क्रमाय विमलं सेनोत्तरं वांछितं॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

सोलह कारणका अर्घ।

उदकचंदनतंदुलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घकैः।
धवलमंगलगानरवाकुले जिनगृहे जिनहेतुमहं यजे॥

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

दशलक्षण धर्मका अर्घ।

उदकचंदनतंदुलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घकैः।
धवलमंगलगानरवाकुले जिनगृहे जिनधर्ममहं यजे॥ ५॥

ओं ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्भवोत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्यदशलाक्षणिकधर्मेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥

उदकचंदनतंदुलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घकैः।
धवलमंगलगानरवाकुले जिनगृहे जिनरत्नमहं यजे॥ ६॥

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय त्रयोदशप्रकारसम्यक्चारित्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतिपाठ विसर्जन ।

शांतिनाथमुख शशि उनहारी, शील गुणव्रत संयमधारी ।
लखन एकसौ आठ विराजैं, निरखत नयन कमलदल लाजैं ॥
पंचम चक्रवर्ती पदधारी, सोलम तीर्थंकर सुखकारी ।
इंद्र नरेंद्र पूज्य जिननायक, नमों शांति हित शांति विधायक।
दिव्य विटप पहुपनकी वरसा, दुंदुभि आसन वाणी सरसा
छत्र चमर भामंडल भारी, ये तुव प्रातिहार्य मनहारी ॥ ३॥
शांति जिनेश शांति सुखदाई, जगत पूज्य पूजौं शिरनाई ।
परम शांति दीजे हम सबको, पढैं तिन्हैं पुनि चार संघको ॥

वसंततिलका ।

पूजैं जिन्हे मुकुटहार किरीट लाके ।
इंद्रादि देव अरु पूज्य पदाब्ज जाके ॥
सो शांतिनाथ वर वंश जगत्प्रदीप ।
मेरे लिये करहिं शांति सदा अनूप ॥ ५ ॥

इंद्रवज्रा ।

संपूजकोंको प्रतिपालकोंको ।
यतीनको औ यतिनायकोंको ॥
राजा प्रजा राष्ट्र सुदेशको ले ।
कीजे सुखी हे जिन शांतिको दे ॥ ६ ॥

स्रग्धरा ।

होवै सारी प्रजाको सुखबलयुत हो, धर्मधारी नरेशा ।
होवै वर्षासमै पै तिलभर न रहै, व्याधियोंका अँदेशा ॥

होवै चौरी न जारी सुसमय वरतै, हो न दुष्काल भारी ।
सारे ही देश धारैं जिनवर वृषको, जो सदा सौख्यकारी ॥७॥

दोहा।

घाति कर्म जिन नाशकरि, पायो केवलराज।
शांति करैं ते जगतमें, वृषभादिक महाराज ॥ ८ ॥

मंदाक्रांता।

शास्त्रोंका हो पठन सुखदा, लाभ सत्संगतीका ।
सद्वृत्तोंका सुजस कहके, दोष ढाकूं सभीका ॥
बोलूं प्यारे वचन हितके, आपका रूप ध्याऊं ।
तौलों सेऊं चरन जिनके, मोक्ष जौलौं न पाऊं ॥

आर्या।

तव पद मेरे हियमें, मम हिय तेरे पुनीत चरणोंमें ।
तबलौं लीन रहो प्रभु, जब तक पाया न मुक्तिपद मैंने १०
अक्षर पद मात्रासे, दूषित जो कछु कहा गया मुझसे ।
क्षमा करो प्रभु सो सब, करुणा करि पुनि छुडाउ भवदुखसे
हे जगबंधु जिनेश्वर, पांऊ तव चरण शरण बलिहारी ।
मरणसमाधि सुदुर्लभ, कर्मोंका क्षय सुबोध सुखकारी ॥

पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

विसर्जन पाठ । दोहा ।

विन जाने वा जानके, रही टूट जो कोय ।
तुव प्रसादतैं परम गुरु, सो सब पूरन होय ॥ १ ॥

पूजन विधि जान्यो नहीं, नहिं जान्यो आह्वान।
और विसर्जन हूँ नहीं, क्षमा करो भगवान ॥ २ ॥
मंत्रहीन धनहीन हूँ, क्रियाहीन जिनदेव !
क्षमा करहु राखहु मुझे, देहु चरणको सेव ॥ ३ ॥
आये जो जो देव गन, पूजे भक्ति प्रमान।
सो अब जावहु कृपाकर, अपने अपने थान ॥ ४ ॥

इति जिनपूजा शांति पाठ विसर्जन समाप्त।

१५. चौबीस तीर्थंकरोंके नाम और चिन्ह.

चौपाई।

वृषभ नाथका 'वृषभ' जु जान। अजित नाथके 'हाथी' मान
सम्भव जिनके 'घोडा' कहा। अभिनन्दन पद 'वन्दर' लहा
सुमति नाथके 'चकवा' होय। पद्म प्रभके 'कमल' जु जोय
जिन सुपार्श्वके 'सथिया' कहा। चन्द्र प्रभ पद 'चन्द्र' जु लहा
पुष्पदंत पद 'मगर' पिछान। 'कल्पवृक्ष' शीतल पद मान
श्रीश्रियांसपद 'गेंडा' होय। वासुपूज्यकै 'भैंसा' जोय
विमलनाथ पद 'सूकर' मान। अनन्तनाथके 'सेही' जान
धर्मनाथके 'वज्र' कहाय। शांतिनाथ पद 'हिरन' लहाय
कुन्थुनाथके पद 'अज' चीन। 'अर' जिनके पद चिह्न जु 'मीन'
मल्लिनाथ पद 'कलसा' कहा। मुनि सुव्रतके 'कछुआ' लहा
लाल कमल नमि जिनके जोय। नेमिनाथ पद 'शंख' जु होय
पार्श्वनाथके 'सर्प' जु कहा। वर्द्धमान पद 'सिंह' हि लहा ॥

१६. दृढसूर्य चौरकी कथा।

—:o:—

उज्जयनी नगरीमें राजा धनपाल राज्य करता था। उसकी रानीका नाम धनमती था। बसंतके उत्सवमें वसन्तसेना नामकी एक वेश्याने रानीके गलेमें एक अत्यन्त दिव्य सुंदर हार देख कर विचारा कि—"ऐसे हारके पाये विना मेरा जीवन व्यर्थ है।" और वह इसी चिंतामें अपने घर आकर शय्यापर पड़ रही। एक दृढसूर्य नामका चौर उसका यार था। उसने रात्रिको आकर इस चिंतामें पडी हुई देखकर पूछा—प्रिये! क्या मुझपर नाराज हो गई हो जो इस प्रकार निरुत्साह देख पडती हो। वेश्याने कहा—"नहीं प्यारे! मैं तुम पर रुष्ट नहीं हूं। किंतु आज मैंने रानीके गलेमें एक सुंदर हार देखा था। उसके पहरे विना मेरा जीवन नहीं। चौरने कहा कुछ चिंता मत करो, मैं अभी ला देता हूं। इसप्रकार कहकर वह चौर किसी न किसी प्रकार राजमहलमें जाकर रानीके गलेसे हार उतार ले आया परन्तु उस हारकी प्रभा देखकर कोटपालने उस चौरको पकड लिया और राजाके पास ले जाने पर राजाज्ञा से शूली पर चढा दिया। उस समय धनदत्त नामके शेठ चैत्यालयकी बन्दनाके लिये वहांसे निकले तो उन्हे देखकर चौरने गिडगिडा कर कहा कि—शेठ तुम बडे दयालु जान पडते हो, मैं बहुत प्यासा हूं, कृपा करके मुझे पानी

लाकर पिलावो तो आपको बड़ा पुण्य होगा। शेठको चौर पर दया आ गई और बोला कि--मेरे गुरुने एक विद्या साधनेको एक मन्त्र जपने दिया है सो मैं हर समय उसका जाप करता हूं। यदि तुम उस मंत्रको याद रक्खो और मुझे पानी लाये बाद मुझे सुनाकर याद करा देवो तो मैं पानी ला दूं। तव चौरने उसे स्वीकार किया उसने पंचनमस्कार मन्त्ररूपी महाविद्या चौरको बतला दी और पानी लानेको चल दिया। इधर दृढसूर्यको नमस्कार मन्त्रका उच्चारण करते करते शूली पर चढ़ा दिया सो मन्त्रके प्रभाव से मर कर वह सौधर्मस्वर्गमें जाकर देव हुवा।

चौरके मर जाने पर चौकीदारोंने राजासे जाकर कहा कि हे देव! धनदत्त शेठने चौरके पास जाकर कुछ धीरे २ सलाहकी थी। इस पर राजाने यह अनुमान करके कि शेठके साथ चौरकी जरूर साजिस होगी और शेठके घरमें चौरीका गुप्त धन भी अवश्य होगा इसलिये शेठको पकड़नेके लिये सिपाही भेजे। परन्तु शेठके दरवाजे पर बैठे हुये पहरेदारने उन्हे घरके भीतर जाने नहीं दिया और जब वे जबरदस्ती जाने लगे तो पहरेदारने लाठीसे उनकी खूब ही खबर ली। यहां तक कि वे बेहोश होगये। राजाने इस बातकी खबर पाकर क्रोधित होकर और भी बहुतसे नोकर भेजे परन्तु पहरेदारने उनको भी मार पीटकर बेहोश कर दिया—आखिर राजा बहुतसी फौज लेकर आया परन्तु

पहरेदारका बाल भी बांका नहिं कर सका उसने सब सेना को क्षण भरमें मार पीट कर सुला दिया। यह देखकर राजा भयके मारे भागने लगा परन्तु उसने भागने नहिं दिया और कहा कि हे राजा! यदि तू शेठकी शरण ले तौ तुझे बचाता हूं नहीं तौ तेरी रक्षा नहीं है तब राजा घरमें गया और शेठके पास जाकर बोला—शेठजी! मुझे बचाओ बचाओ, राजाको इस हालतमें लाचार देखकर शेठको अचम्भा हुआ। उसने पहरेदारसे पूछा कि—तू कौन है? और महाराजकी यह दशा तूने किस प्रकार की? पहरेदारने नमस्कार करके कहा कि शेठजी! मैं दृढसूर्य नामका चोर हूं। आपके मन्त्र प्रभावके कारण मैं सौधर्मस्वर्गमें देव हुवा हूं। इस समय आपकी रक्षाकेलिये मैंने यह सब कौतुक किया है। राजाकी सेनाके ये सब लोग पडे हैं सो मरे नहीं हैं मैंने बेहोश कर दिये हैं।

यह पहरेदार वही चोर था जिसको धनदत्तने सूलीपर चढते समय मन्त्र दिया था। उसीके प्रभावसे यह देव हुआ और अवधिज्ञानसे अपनी पहिली हालत विचार कर अपने उपकारी शेठको विपत्तिमें फँसा हुवा जानकर और आप मायासे पहरेदार बनकर शेठकी रक्षा की।

देखो विद्यार्थियो! मरते समय एक चोर बिना विचारे ही नमस्कार मन्त्रका उच्चारण करनेसे देवपदको प्राप्त हुआ तौ अन्य सदाचारी पुरुष शुद्ध मनसे इस मन्त्रका पाठ वा

जाप करैं तौ क्यों न स्वर्गादिक सुखोंको प्राप्त होवें ? इसलिये तुमको भी नमस्कार मंत्रको हर कामके पूर्व सात बार पढ लेना चाहिये और साम सवेरे मन्दिरजीमें समय मिलै तौ एक माला नमस्कारमन्त्रकी फेर लेना चाहिये।

—:o:—

१७. शुद्ध वायु।

—:o:—

आहार और पानीके विना हम कई दिन तक जी सकते है परंतु वायुके विना क्षणमात्र भी जीना नहिं हो सकता क्योंकि हमलोग पैदा होते ही सबसे पहिले श्वास द्वारा वायु ग्रहण करते और फिर उसको निश्वास द्वारा (उच्छ्वास द्वारा) बाहर करदेते हैं सो जन्मसे मृत्युपर्यंत सोते बैठते उठते निरंतर श्वासोच्छ्वास लेते रहते हैं। श्वासोच्छ्वासको लिये विना कोई भी नहिं जी सकता इस कारण जीवनधारण करनेके लिये वायुकी सर्वापेक्षा अधिक आवश्यकता है क्योंकि वायु का स्वाभाविक गुण ही यह है कि मनुष्यकी देहका सदैव पुष्ट करना परंतु वायु अनेक कारणोंसे दूषित हो जाती है। जिस स्थानपर जल होता है वहांपर जलके संयोगसे सदैव अनेक प्रकारके द्रव्य गलते सडते रहते हैं और जिसस्थान पर हवा भलेप्रकार नहिं चल सकती तथा जिस स्थानपर मैला वा दुर्गंधित (गले सडे) पदार्थ पडे रहते हैं उस स्थानकी वायु अवश्य दूषित (मैली) हो जाती है।

जगतमें जितने पदार्थ हैं वे सूर्यकी गर्मीसे सदैव जलते रहते हैं और उन सब पदार्थोंसे उष्ण हुई दूषित वाष्प (भाफ-भाप) हवाके साथ मिल जाती है, सो जब हम ऐसी मैली हवाको श्वासोच्छ्वास के द्वारा ग्रहण करते हैं तब हमारे शरीरमें अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इस कारण घर बनवाना हो तो उत्तम स्थान देखकर बनवाना चाहिये तथा जिस घरमें हवा भले प्रकार चलती फिरती रहै ऐसे मकानमें ही रहना चाहिये। जहांकी हवा अच्छी नहीं वहां पर रहना वा घर बनवाना अपने आप मृत्युको बुलाना है।

जिस घरमें पूर्णतया प्रकाश (उजाला) हो वहांपर हवाका संचार (आना जाना) अच्छी तरहसे होता है। इसकारण जिस घरमें प्रकाश हो, अँधेरा नही हो ऐसे घरमें रहना वा ऐसा प्रबंध करना चाहिये।

रहनेके स्थानका वायु निर्मल (साफ) रखनेके लिये दो बातैं अवश्य करनी चाहिये। एक तो मैला साफ करनेका उपाय और दूसरा नालियें बनाना। क्योंकि हमको (गृहस्थियोंको) निरंतर ही जलका काम पडता है। जलके बिना मनुष्योंका जीवन निर्वाह कदापि नहिं हो सकता, किंतु बहुत सावधानतासे रहने पर भी थोडा बहुत जल इधर उधर अवश्य ही बिखर (फैल) जाता है। वह जल जहां तहां पडनेसे वहीं पर जम जाता है और उससे मकान भी हमेशह सीला रहता है। इसकारण नालियें बनवाना उचित है जिससे

कि वह जल घरमें वा घरके आसपास न जमने पावै। जिस घरमें सदैव सील रहा करती है वहांपर हवा कदापि निर्मल नहिं रह सकती। इसके सिवाय वहांपर असंख्य विषैले कीडा उत्पन्न होकर श्वासके द्वारा पेटमें जाते हैं और वे महामारी आदि अनेक रोगोंको उत्पन्न कर देते हैं।

जिस प्रकार हमको जलसे हमेशह काम पडनेके कारण हमारे घर सीले रहते हैं, उसप्रकार हमारे घरमें वा घरके चारों ओर मैला भी पडा रहता है क्योंकि गृहस्थके यहां साग तरकारी फल अन्न वगेरह जो जो पदार्थ आते हैं उन-मेंसे कुछ न कुछ भाग अप्रयोजनीय समझकर फेंक दिया जाता है। वह यदि हमेशह घरमें या घरके इधर उधर पडा रहै तो घरकी हवा कदापि शुद्ध नहिं रह सकती। यद्यपि शहरोंमें तो कूडा करकट इकठ्ठा करके घरके वाहर डाल-देनेसे म्यूनिसिपल्टीके भंगी सरकारी गाडियोंमें उठाकर ले जाते हैं परंतु छोटे २ गावोंमें वह वहीं पडा रहता है इस-लिये घरसे वाहर ही कूडा कर्कट फेंक देना उचित नहीं है किंतु गांवसे वाहर वहुत दूर फेकना चाहिये क्योंकि इस मैलेसे हवा जितनी बिगडती है उतनी किसीसे भी नहिं विगडती। इसकारण घर सदैव साफ सुथरा रहै ऐसे उपाय हमेशह करते रहना चाहिये। बस इन दोनों उपायोंके करनेसे वायु वहुधा शुद्ध रहैगी और शुद्ध वायुके सेवनसे शरीरमें किसी प्रकारका रोग नहिं होने पावेगा।

१८. आलोचना पाठ.

बंदौं पांचौं परम गुरु, चौवीसौं जिनराज।
करूं शुद्ध आलोचना, शुद्धि करनके काज ॥ १ ॥

चाल छंद।

सुनिये जिन अरज हमारी। हम दोष किये अति भारी।
तिनकी अव निर्वृत्ति काज। तुम सरन लही जिनराज ॥ २॥
इक वे ते चउ इंद्री वा। मनरहित सहित जे जीवा।
तिनकी नहिं करुणाधारी। निरदय है घात विचारी॥ ३ ॥
समरंभ समारंभ आरंभ। मन वच तन कीने प्रारंभ।
कृत कारित मोदन करिकैं। क्रोधादि चतुष्टय धरिकैं ॥ ४ ॥
शत आठ जु इन भेदनतैं। अघ कीने पर छेदनतैं।
तिनकी कहु कोलों कहानी। तुम जानत केवलज्ञानी ॥ ५ ॥
विपरीत इकांत विनयके। संशय अज्ञान कुनयके।
वश होय घोर अघ कीने। वचतैं नहिं जात कहीने ॥ ६ ॥
कुगुरुनकी सेवा कीनी। केवल अदया कर भीनी।
याविध मिथ्यात भ्रमायो। चहुँ गति मधि दोष उपायो ॥७॥
हिंसा पुनि झूठ जु चोरी। परवनितासों दृग जोरी।
आरंभ परिग्रह-भीनो। पुन पाप जु या विध कीनो ॥ ८ ॥
सपरस रसना घ्राननको। चख कान विषय सेवनको।
बहु कर्म किये मन मानी। कछु न्याय अन्याय न जानी ॥

फल पंच उदम्बर खाये । मधु मांस मद्य चित चाहे ।
नहिं अष्ट मूलगुणधारी । विसनन सेये दुखकारी ॥ १० ॥
दुई बीस अभख जिन गाये । सो भी निशदिन भुंजाये ।
कछु भेदाभेद न पायो । ज्यों त्यों कर उदर भरायो ॥११॥
अनंतान जु बंधी जानो । प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यानो ।
संज्वलन चौकरी गुनिये । सब भेद जु षोडश मुनिये ॥१२॥
परिहास अरति रति शोग । भय ग्लानि तिवेद संजोग ।
पनवीस जु भेद भये इम । इनके वश पाप किये हम ॥१३॥
निद्रावश शयन कराई । सुपने मधि दोष लगाई ।
फिर जाग विषय वन धायो । नाना विध विषफल खायो ॥
किय अहार निहार विहारा । इनमें नहिं जतन विचारा ।
विन देखी धरी उठाई । विन शोधी भोजन खाई ॥ १५ ॥
तबही परमाद सतायो । बहुविध विकलप उपजायो ।
कछु सुधिबुधि नाहिं रही है । मिथ्या मति छाय गई है ॥
मरजादा तुम ढिग लीनी । ताहूमें दोष जु कीनी ।
भिनभिन अब कैसे कहिये । तुम ज्ञानविषै सब पइये ॥१७॥
हा हा मैं दुठ अपराधी । त्रस जीवनराशि विराधी ।
थावरकी जतन न कीनी । उरमें करुणा नहिं लीनी ॥ १८ ॥
पृथिवी बहु खोद कराई । महलादिक जागां चिनाई ।
पुन विन गाल्यो जल ढोल्यो । पंखातैं पवन विलोल्यो १९
हा हा मैं अदयाचारी । बहु हरितकाय जु विदारी ।
या मधि जीवनके खंदा । हम खाये धरि आनंदा ॥ २० ॥

डा मैं परमाद बसाई। विन देखे अगनि जलाई।
तामधि जे जीव जु आये। तेहू परलोक सिधाये ॥ २१ ॥
बींध्यो अन राति पिसायो। ईंधन विन शोध जलायो।
झाडू ले जागां बुहारी। चींटि आदिक जीव बिदारी ॥२२॥
जल छानि जिवानी कीनी। सोहू पुनि डारि जु दीनी।
नहिं जलथानक पहुंचाई। किरिया विन पाप उपाई ॥२३॥
जल मल मोरिन गिरवायो। कृमिकुल बहुघात करायो।
नदियन मधि चीर धुलाये। कोसनके जीव मराये ॥ २४ ॥
अन्नादिक शोध कराई। तामैं जु जीव निसराई।
तिनका नहिं जतन कराया। गलियारे धूप डराया ॥ २५ ॥
पुनि द्रव्य कमावन काज। बहु आरंभ हिंसा साज।
कीये तिसना वश भारी। करुणा नहिं रंच विचारी ॥ २६ ॥
इत्यादिक पाप अनन्ता। हम कीने श्रीभगवन्ता।
संतति चिरकाल उपाई। वानीतैं कहिय न जाई ॥ २७ ॥
ताको जु उदय जब आयो। नानाविध मोहि सतायो।
फल भुंजत जिय दुख पावै। वचतैं कैसे करि गावै ॥२८॥
तुम जानत केवलज्ञानी। दुख दूर करो शिव थानी।
हम तो तुम शरन लही है। जिनतारन विरद सही है ॥ २९ ॥
जो गांव पती इक होवै। सो भी दुखिया दुख खोवै।
तुम तीन भुवनके स्वामी। दुख मेटो अंतरयामी ॥ ३० ॥
द्रौपदिको चीर बढायो। सीतापति कमल रचायो।
अंजनसे किये अकामी। दुख मेटो अन्तरजामी ॥ ३१ ॥

मेरे अवगुन न चितारो। प्रभु अपनो विरद निहारो।
सब दोषरहित कर स्वामी। दुख मेटहु अन्तरजामी॥ ३२॥
इन्द्रादिक पदवी न चाहूं। विषयनिमें नाहिं लुभाऊं।
रागादिक दोष हरीजे। परमातम निज पद दीजे॥ ३३॥

दोहा।

दोषरहित जिनदेवजी, निजपद दीज्यो मोहि।
सब जीवनके सुख बढै, आनंद मंगल होय॥ ३४॥
अनुभव माणिक पारखी, जौंहरी आप जिनन्द।
ये ही वर मोहि दीजियो, चरन शरन आनन्द॥३५॥

———:०:———

१९. पांच इंद्रियें।

———:०:———

स्पर्शन (त्वक्) रसना (जिह्वा) घ्राण (नासिका) चक्षु (नेत्र) श्रोत्र (कर्ण) ये पांच इंद्रिय हैं। इन इंद्रियों के द्वारा ही हमको सर्व प्रकारका ज्ञान होता है इस कारण इनको ज्ञानेंद्रिय भी कहते हैं। हमारे शरीरमें ये इंद्रिय नहिं होतीं तो हम किसी भी विषयको नहिं जान सकते इस कारण ये इन्द्रियें हमको वहुत उपकारी हैं।

स्पर्शन- स्पर्शन शरीरके चमडेको कहते हैं इस इन्द्रिय का विषय स्पर्श करना (छूना) है अर्थात् स्पर्शन इन्द्रिय के द्वारा शीत, उष्ण, हलका, भारी, चिकना, रूखा,

कोमल, कठोर इन आठ प्रकारके स्पर्शका ज्ञान होता है इसी कारण इसे स्पर्शन इन्द्रिय कहते हैं। अन्धकारमें जब चक्षु इन्द्रियसे ज्ञान नहिं होता तब स्पर्शन इन्द्रियकी सहायतासे ही काम लेते हैं। जिसमें भी हाथ वा अंगुलियोंका चमडा सबसे अधिक काम देता है। हाथसे छूकर हम अनेक पदार्थोंको भले प्रकार जान सकते हैं।

रसना– अर्थात् जिह्वा इन्द्रियका विषय रस (स्वाद) लेना है। रस पांच प्रकारका है। मिष्ट अम्ल कटु तिक्त लवण ये पांच प्रकारके रस हैं। गुड शक्कर मिश्री आदिके स्वादको मिष्ट रस (मीठा) कहते हैं। इमली अमचूर नींबू हरडे बहेडे फिटकरी आदिके स्वादको अम्लरस कहते हैं। नीम करेले कुटकी आदिके स्वादको कटुरस कहते हैं। सोंठ मिरच पीपल आदिके स्वादको तिक्त वा चरपरा रस कहते हैं। नमक सेंधा नोन जवाखार आदिके स्वादको लवण रस कहते हैं। इन पांच प्रकारके रसोंका ज्ञान रसना इन्द्रियसे ही होता है अर्थात रसना इन्द्रियके (जिह्वाके) द्वारा ही हम इन रसोंको जानते हैं। जो रस अपने मनको प्यारा लगे उसको सुरस वा सुस्वादु कहते हैं और जो रस अपने मनको बुरा लगे उसे विरस वा बेस्वाद कहते हैं। हम लोग जो बोलते हैं उस बोलनेमें भी रसना इन्द्रियकी बहुत सहायता होती है। जिह्वा न होय तो हमारे बहुतसे काम अटक जांय जिसके जिह्वा नहिं होती उसको मूक (गूंगा) कहते हैं।

घ्राण—घ्राण इन्द्रियका विषय गंध है। गंध दो प्रकार की है। एक सुगन्ध, एक दुर्गंध। इन सुगन्ध दुर्गंधका ज्ञान नासिका इन्द्रियसे ही होता है। जिस वस्तुमें जैसी गन्ध होती है उसके सूक्ष्म परमाणु हवाके साथ उडकर हमारी नासिका इन्द्रियमें प्रवेश करते हैं तब हमे सुगन्ध दुर्गंधका ज्ञान होता है। नासिका इन्द्रिय न हो तौ कौनसा पदार्थ सड गया है कौनसा ताजा व अच्छा है इत्यादि ज्ञान कदापि नहीं हो सकता।

चक्षु— इन्द्रियका विषय वर्ण (रूप-रंग) जानना है। वर्ण पांच प्रकारके हैं। स्वेत, पीत, कृष्ण, नील, लाल। इन वर्णोंको दो दो तीन तीन न्यूनाधिक मिलानेसे हरे, बैंगनी, जंगालि आदि अनेक प्रकारके रंग बन जाते हैं। इन सर्व प्रकारके वर्णोंको हम चक्षु (नेत्रों) द्वारा ही जान सकते हैं चक्षुको दर्शनेन्द्रिय, नेत्र व नयन भी कहते हैं। जहांपर अंधकार नहिं होता वहींपर चक्षु इन्द्रियसे जान सकते हैं। प्रकाशकी सहायताके विना चक्षु इन्द्रियसे ज्ञान होना बडा कठिन है। दिनमें तौ सूर्यका प्रकाश रहता है और रात्रिमें चंद्रमा तारोंका तथा दीपका प्रकाश रहता है जब चन्द्रमा तारे बद्दलोंसे ढक जाते अथवा घरोंमें चांद तारोंका प्रकाश नहिं पहुंचता तब दीपक (चिराग) दिया सलाई वगेरहके प्रकाशसे काम लेते हैं जिससे निकटवर्ती आवश्यकीय पदार्थोंको भले प्रकार देख सकते हैं। चक्षु इन्द्रिय जिनकी नष्ट हो

आती है उनको अंधे कहते हैं । अंधोंके दुःखोंकी हद्द ही नहिं होती इस कारण चक्षु इन्द्रियकी दर्शन शक्ति किसी प्रकार भी नहिं विगडे ऐसे उपाय हमेशह करते रहना चाहिये ।

श्रोत्र– इन्द्रियको कर्ण वा कान कहते हैं । श्रोत्र इंद्रिय का विषय शब्द है । परस्पर दो वस्तुओंके भिड़नेसे शब्द उत्पन्न होकर हवाके साथ हमारे कानमें प्रवेश करता है तब हमें सुनाई आती है । श्रोत्रके द्वारा जो ज्ञान हो उसको श्रवण ज्ञान कहते हैं । इस कारण इस श्रोत्र वा कर्णको श्रवणेंद्रिय भी कहते हैं । शब्द और कानोंके बीचमें भीत वगेरह द्वारा हवा आनेका रास्ता बन्द हो तो वह शब्द कदापि सुनाई नहिं देगा । श्रवणेंद्रिय जिसकी विगड जाय अर्थात् श्रवण करनेकी शक्ति जिसकी नष्ट हो जाती है उसको बधिर (बहरा) कहते हैं ।

इन पांचों इंद्रियोंको अपने अपने विषयमें लगानेवाला मन है । मनकी प्रेरणाके विना इन्द्रियें कुछ भी नहिं कर सकतीं । जब हमारा मन चाहता है तब ही हम देखते सुनते वा सुगन्धादिक अनुभव करते हैं । मन नहिं चाहै और किसी अन्य विचारमें या ध्यानमें लगा हो तो आंखसे दीखता नही, कानसे सुनते नहीं, नासिकासे घ्राण नहिं आती जिह्वासे स्वाद नहिं आता, स्पर्शका ज्ञान भी नहिं होता । मन हमारे हृदय स्थानमें आठ पांखुडीके कमलके आकारका

एक पुद्गल पिंड है यह प्रगटरूप देखनेमें नहिं आता । इस कारण इसको अनिंद्रिय भी कहते हैं । कमलाकार मनको तौ द्रव्य मन कहते हैं और उसके द्वारा जो विचार होता रहता है उसे भाव मन कहते हैं ।

——:०:——

२०. भूधर जैननीत्युपदेशसंग्रह दूसराभाग ।

-:०:-

बुढापेका वर्णन ।

कवित्त मनहर ।

बालपनै वाल रह्यो पीछैं गृहभार भयो, लोकलाजकाज वांध्यौं पापनको ढेर है । अपनौं अकाज कीनो लोकनमें जस लीनो, परभो विसार दीनो विषैवसजेर[1] है ॥ ऐसेही गई विहाय अलपसी रही आयु[2] नरपरजाय चर आंधेकी वटेर है । आये सेत[3] भैया अब काल है अवैया अहो, जानी रे सयाने तेरे अजौं हूँ अंधेर है ॥ ॥ १ ॥

मत्तगयंद सवैया ।

बालपनै न सँभार सक्यो कछु, जानत नाहिं हिताहितही को यौवनवैस वसी वनिता उर, कै नित रागरह्यो लछमीको ॥

---

१ । विषयरूपी विषमें फसा हुवा । २ आयु—उमर । ३ सफेद बाला ४ अब भी ५ युवाअवस्थामें ।

यौं पँन[6] दोइ विगोइ दयो नर, डारत क्यों नरकै[7] निज जीको।
आये हैं सेत अजौं शठ चेत, 'गई सोगई अब राखि रहीको' ॥२॥

कवित्त मनहर।

सारनर देह सब कारजको जोग येह, यह तौ विख्यात बात वेदनमें बँचै है। तामैं तरुणाई धर्मसेवनको समै भाई, सेये तब विषै जैसैं माखी मधु रचै है॥ मोहमंदभोये[8] धनरामा हितरोज रोये, यौंही दिन खोये खाय कोदौं[9] जिममचै है। अरे सुन बौरे अब आये शील धोरे अजौं, सावधान होरे नर नरकसौं बचै है॥ ३॥

मत्त गयंद सवैया।

बाय[11]लगी कि बलाय[12] लगी, मदमत्त भयौ नर भूलत त्यौंही।
वृद्ध भये न भजे भगवान, विषैविषखात अघात न क्यौंही॥
सीस भयो बगुलासम सेत[10] रह्यो उर अंतर श्याम अजौंही
मानुषभो मुक्ताफलहार, गँवार तगा[13]हित तोरत यौंही॥ ४॥
दृष्टि घटी पलटी तनकी छवि, बंक[1] भई गति लंक[2] नई[3] है।
रूस रही परनी[4] घरनी अति, रंक भयो परियंक[5] लई है॥

६ वालकपन और जवानीपन ये दो अवस्थायें। ७ नरकमें। ८ मोहरूपी मदमें मग्न हुये। ९ कोदों धान जिसप्रकार खेतमें बढकर सघन हो जाता है उसीप्रकार मदोन्मत्त हो जाता है। १० सफेदवाला। ११ वातजन्य पागलपन। १२ भूतप्रेतकी वाधा। १३ सूतके धागेके लिये।

१ वांको-कहीं परपरै रखै कहीं पर पडता है २ कमर। ३ झुक गई है वा टेडी पड गई है। ४ व्याही हुई घरवाली। ५ पलंग-चारपाई।

काँपत नार[6] वहै मुख लार, महाँमति संगति छांरि गई[7] है।
अंग उपंग पुराने परे[8], तिसना उर और नवीन भई है॥ ५॥

कवित्त मनहर।

रूपको न खोज रह्यो तरुज्यों तुषार दह्यो, भयो पतझार किधौं रही डार सूनीसी। कूवरी भई है कटि दूवरी भई है देह, ऊवरी[9] इतेक आयु सेरमांहि पूंनीसी[10]॥ जोवनने विदा लीनी जराने जुहार कीनी, हीनी भई सुधिवुधि सवै वात ऊनी-सी[11]॥ तेज घट्यो ताव घट्यो जीतवको चाव घट्यो, और सव घट्यो एक तिस्ना दिन दूनीसी॥ ६॥ अहो इन आपने अभाग उदै नाहिं जानी, वीतराग वानी सार दयारस-भीनी है। जोवनके जोर थिर[12]जंगम अनेक जीव, जानि जे सताये कछु करुना न कीनी है॥ तेई अव जीवरास आये परलोक पास, लेंगे वैर देंगे दुख भई ना नवीनी है। उनहीके भयको भरोसो जान कांपत है, याही डर डोकराने[13] लाठी हाथ लीनी है॥ ७॥

जाको इंद्र चाहैं अहमिंद्रसे उमाहैं जासौं, जासौं जीव-मुक्ति माहिं जाय भौमल वहावै है। ऐसो नरजन्मपाय विषै-विष खायखोयो, जैसें कांचसांटै[14] मूढ मानक गमावै है॥ माया

६ गर्दन। ७ बुद्धि छोडके चली गई। ८ गात्राणि शिथिलायंते तृष्णैका तरुणायते। ९ शेष रही है। १० सेरभर रुईमेंसे एक पूनीकी वरावर ११ कमतीसी। १२ स्थावर एकेंद्रिय जीव। १३ वुड्ढेने। १४ वदलेमें

नदी बूडि[15] भीजा कायावलतेज छीजा, आँथापन[16] तीजा अब कहा बनि आवै है। तातैं निज सीस ढोलै[17] नीचे नैन किये डोलै, कहा वदि बोलैं वृद्ध बँदन[18] दुरावै है॥ ८॥

मत्तगयंद सवैया।

देखहु जोर जरा भटको, जमराजमहीपतिको अगवानी।
उज्जलकेस निसान धरैं, बहुरोगनकी संग फौज पलानी॥
कायपुरी तजि भाजि चल्यो जिहि, आवत जोवनभूप गुमानी।
लूट लई नगरी सगरी[19] दिन दोयमें, खोय है नाम निसानी॥९॥

दोहा।

सुमतिहि तजि जोवनसमय, सेवइ बिषय विकार।
खलेंसांटै[20] नहिं खोईये, जन्मजवाहिर सार॥ १०॥

——:०:——

२१. राजा शुभकी कथा।

——:०:——

मैथिल देशमें मिथिला नामका नगर है उसके राजाका नाम शुभ था। उसकी रानीका नाम मनोरमा और उसके पुत्र का नाम देवरति था। देवरति गुणवान और बुद्धिमान था कोई प्रकारका दोष या विसन उसे छू तक नहिं गया था।

१५ डूबकर। १६ तीसरापन बुढापा। १७ सिर हिलाता है। १८ मुह छिपाता है। १९ सारी। २० खलके बदलेमें।

एक दिन देवगुरु नामके अवधिज्ञानी मुनिराज मिथिलामें आये। शुभराजा बहुतसे भव्य जनोंके साथ मुनि वंदनाके लिये गया। मुनिकी सेवा पूजा करके उसने धर्मोपदेश सुना। अंतमें उसने अपने भविष्यके संबन्धमें प्रश्न किया—योगीराज! कृपा करके बतलाइये कि आगेको मेरा जन्म कहां होगा। उत्तरमें मुनि महाराजने कहा कि— राजन् तुमारा भविष्य अच्छा नहिं है। प्रथम तो शहरमें घुसते ही तुमारे मुखमें विष्टाका प्रवेश होगा फिर तुमारा छत्रभंग होगा और आजसे सातवें दिन बिजली गिरनेसे तुमारी मृत्यु होगी सो मरकर अपने ही पाखानेमें एक पांच रंगके बडे कीडेकी देह प्राप्त होगी। सच है, पापके उदयसे सभी कुछ होता है।

मुनिका शुभके सम्बन्धका भविष्य कथन सच होने लगा। दूसरे ही दिन बाहरसे लौटकर जब वह शहरमें घुसने लगा तो घोडेके पावोंकी ठोकरसे उड कर थोडा सा विष्टा का अंश राजाके मुहमें आ गिरा और यहांसे वे थोडा ही आगे और बढे होंगे कि एक जोरकी आंधी आई, उसने उनके छत्रको तोड डाला, घर जाकर अपने पुत्र देवरतिको बुलाकर कहा—बेटा! मेरे कोई ऐसा ही पाप कर्मका उदय आवेगा जिससे मरकर मैं अपने पाखानेमें पांच रंगका एक कीडा होऊंगा सो तुम उस समय मुझे मार डालना। इस लिये कि मैं फिर कोई दूसरी अच्छी गति प्राप्त कर सकूं। विष्टा और छत्र भंगकी बातें देखनेसे राजा शुभको

निश्चय हो गया था कि– मुनिकी कही हुई सभी बातें सच होवेंगी परन्तु तौ भी उन्हे कुछ संदेह था इसलिये उन्होंने विजली गिरनेके भयसे रक्षा पानेकी इच्छासे एक लोहेका संदूक वनवाया और विजली गिरनेका जो समय मुनिराजने वताया था उससे कुछ पहिले उस संदूकमें वैठकर नोकरों को आज्ञा दी कि गंगाके गहरे जलमें छोड़ देना और आध घंटा वाद निकाल लेना। उसे आशा थी कि मैं इस उपाय से वच जाऊंगा क्योंकि जलमें विजलीका असर कुछ नहिं होगा। परन्तु उसकी यह आशा करना वेसमझी थी क्यों कि प्रत्यक्ष ज्ञानियोंकी बातें कभी झूठ नहिं होती, थोडी ही देरमें विजली चमकने लगी और एक वडे भारी मगर ने संदूकको ऐसे जोरसे उछला दिया कि संदूक जलके वाहर दो हाथ ऊंचे तक उछल आया और सन्दूकका वाहर होना था कि–उसी समय वडे जोरसे कडक कर विजली उस सन्दूक पर गिर पडी और वह भस्म हो गया। जिससे राजा मरकर अपने पाखानेमें पांच रंगका कीडा उत्पन्न हो गया।

पिताके कहे माफक शुभ राजाके पुत्र देवरतिने अपने पाखानेमें जाकर देखा तौ उसे वहां पांच रंगका कीडा दीख पडा और उसने अपने पिताकी आज्ञानुसार मारनेके लिये उसे उठाना चाहा तो वह तुरन्त ही विष्टाके ढेरमें घुस गया। देवरतिको इससे वडा आश्चर्य हुआ, वहुत उपाय

किया परन्तु उस कीडेको वह मार नहिं सका। उसने जिस जिस मनुष्यको इस घटनाका हाल कहा, वह सब संसारकी भयंकर विचित्र लीलाको सुनकर वडा भय करने लगे और संसारका वन्धन काटनेके लिये सवने ही जैन धर्म का आश्रय लिया। कितने हीने तो संसारकी समस्त माया ममता छोडकर जिनदीक्षा ग्रहण कर ली और कितने हीने अभ्यास वढानेकेलिये श्रावकोंके व्रत ग्रहण किये।

देवरतिको इस घटनासे वड़ा अचम्भा हो ही रहा था सो एक दिन उन ही देवगुरु नामक अवधिज्ञानी मुनि महाराजसे इसका कारण पूछा कि–भगवन् क्यों तो पिताने मुझसे कहा कि– मैं विष्टामें कीडा होऊंगा सो तू मुझे मार डालना, और क्यों जव कि मैं उस कीडाको मारने जाता हूं तब वह विष्टाके भीतर ही भीतर घुसने लगता है।

मुनि महाराजने इसके उत्तरमें देवरतिसे कहा कि भाई! यह संसारी जीव गतिसुखी होता है फिर चाहे वह कितनी ही बुरीसे बुरी जगह क्यों न पैदा हो, वह उसी जगह अपने को सुखी मानता है। वहांसे कभी मरना पसन्द नहिं करता यही कारण है कि-- जवतक तुमारे पिता जीते थे तबतक उन्हे मनुष्य जीवनसे प्रेम था और उन्होंने न मरने केलिए उपाय भी किया परन्तु उन्हे सफलता न मिली और ऐसे उच्च मनुष्य गतिसे मरकर–'कीडा होंगे सो भी विष्टामें' इसका उन्हे वहुत ही दुःख था इस कारण ही उन्होंने तुमको उस

अवस्थामें मार डालनेके लिये कहा था। परन्तु अब उन्हें वही जगह अत्यन्त प्रिय है। वे मरना पसन्द नहिं करते इसलिये जब तुम उनको मारने जाते हो तब वह भी भीतर घुस जाते हैं इसमें आश्चर्य और खेद करनेकी कोई बात नहीं है। संसारकी स्थिति ही ऐसी है। मुनिराज द्वारा यह धार्मिक उपदेश सुनकर देवरतिको बडा भारी वैराग्य हो गया और संसारमें कुछ भी सुख नहीं है ऐसा समझ कर उन्हीके पास मुनिदीक्षा लेकर आत्मकल्याण करने लगा।

२२. श्रावकाचार प्रथमभाग।

मंगलाचरण।

सकल कर्ममल जिनने धोये, हैं वे वर्द्धमान जिनराय।
लोकालोक भासते जिसमें, ऐसा दर्पण जिनका ज्ञान॥
बडे चावसे भक्तिभावसे, नमस्कार कर वारंवार।
उनके श्रीचरणोंमें प्रणमूं, सुख पाऊं हर विघ्नविकार॥ १॥

जिनके ज्ञानमें दर्पणकी समान, समस्त लोक अलोक भासता है और जिन्होंने समस्त कर्मरूपी मल आत्मासे धो दिया है उन श्रीवर्द्धमान (महावीर) भगवानको मैं बडे चाव और भक्तिभावसे बारंवार नमस्कार करता हूं॥ १॥

धर्म कहनेकी प्रतिज्ञा।

जो संसार दुःखसे सारे, जीवोंको सुबचाता है।
सर्वोत्तम सुखमें पुनि उनको, भली भांति पहुंचाता है ॥
उसी कर्मके काटनहारे, श्रेष्ठ धर्मको कहता हूं ।
श्रीसमंतभद्रार्यवर्यका, भाव बताना चहता हूं ॥ २ ॥

जो संसारके दुःखोंसे छुटाकर जीवोंको सर्वोत्तम सुखमें पहुंचाता है और कर्मोंको नष्ट करनेवाला है उसी धर्मको श्रीसमंतभद्राचार्यकृत रत्नकरंडश्रावकाचारके अनुसार वर्णन करता हूं ॥ २ ॥

धर्म अधर्म किसे कहते हैं?

गणधरादि धर्मेश्वर कहते, सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान ।
सम्यक्चारित धर्मरम्य है, सुखदायक सब भांति निदान ॥
इनसे उलटे मिथ्या हैं सब, दर्शन ज्ञान और चारित्र ।
भवकारण हैं, भयकारण हैं, दुखकारण हैं मेरे मित्र ॥३॥

गणधरादिक धर्माचार्योंने सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रको सर्वसुखदायक धर्म कहा है और इनसे उलटे मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञान व मिथ्याचारित्रको संसारकी परिपाटी बढानेवाला अधर्म कहा है ॥ ३ ॥

सम्यग्दर्शनका लक्षण ।

आठ अंगयुत तीन मूढ़ता—रहित अमद जो हो श्रद्धान ।
सच्चे देवशास्त्र गुरुपर दृढ सम्यग्दर्शन उसको जान ॥

सच्चे देवशास्त्रगुरुका मैं, लक्षण यहां बताता हूं।
तीनमूढता आठ अंग मद, सबका भेद जताता हूं ॥ ४ ॥

आठ अंगसहित तीनमूढता और आठमदरहित सत्यार्थ देव शास्त्र गुरुपर दृढ श्रद्धान करना सो सम्यग्दर्शन है ॥ ४ ॥

सत्यार्थ (सच्चे) देवकी पहिचान।

जो सर्वज्ञ शास्त्रका स्वामी, जिसमें नहीं दोषका लेश।
वही आप्त है वही आप्त है, वही आप्त है तीर्थ जिनेश ॥
जिसके भीतर इन बातोंका, समावेश नहिं हो सकता।
नहीं आप्त वह हो सकता है, सत्य देव नहिं हो सकता ॥५॥

जो सर्वज्ञ, हितोपदेशी, (शास्त्रका स्वामी) अष्टादश-दोष रहित और वीतरागी है वही सत्यार्थ (सच्चा) आप्त है जिसमें ये तीन गुण नहीं हैं वह सच्चादेव या आप्त कदापि नहीं है ॥ ६ ॥

वीतरागी किसको कहते हैं।

भूखप्यास बीमारि बुढापा, जन्म मरण भय राग द्वेष।
शोक मोह चिंता मद अचरज, निद्रारती खेद ओ स्वेद ॥
दोष अठारह ये माने हैं, हों ये जिनमें जरा नहीं।
आप्त वही है देव वही है, नाथ वही है और नहीं ॥ ६ ॥

जो भूख १ प्यास २ बीमारी ३ बुढापा ४ जन्म ५ मरण ६ भय ७ राग ८ द्वेष ९ शोक १० मोह ११ चिंता १२ मद १३ आश्चर्य १४ निद्रा १५ रति १६ खेद १७

स्वेद १८ इन अठारह दोषोंसे रहित हो, वही वीतरागी सच्चा देव है ॥ ६ ॥

हितोपदेशी किसे कहते हैं ?

सर्वोत्तम पदपर जो स्थित हो, परम ज्योति हो हो निर्मल ।
वीतराग हो महाकृती हो, हो सर्वज्ञ सदा निश्चल ॥
आदि रहित हो अंतरहित हो, मध्यरहित हो महिमावान ।
सब जीवोंका होय हितैषी, हितोपदेशी वही सुजान ॥ ७ ॥

जो परमेष्ठी, (सर्वोत्तम पदपरस्थित) परमज्योति, वीतराग, विमल, कृतकृत्य, सर्वज्ञ आदि मध्य अंतरहित और सब जीवोंका हितैषी हो वही हितोपदेशी सच्चा देव है ॥

जो वीतरागी व कृतकृत्य हो वह हितोपदेशी कैसे हो सक्ता है ?

विना रागके विना स्वार्थके सत्यमार्ग वे वतलाते ।
सुन सुन जिनको सत्पुरुषोंके, हृदय प्रफुल्लित हो जाते ॥
उस्तादोंके करस्पर्शसे जब मृदंग ध्वनि करता है ।
नहीं किसीसे कुछ चहता है, रसिकोंके मन हरता है ॥८॥

जिसप्रकार वजानेवालेके हाथके स्पर्श होने पर मृदंग विना राग और विना स्वार्थके ही मीठे मांठे शब्द सबको सुनाता है उसी प्रकार वीतराग और कृतकृत्य भगवान भी सबके लिये हितका उपदेश कहते हैं जिसको सुनकर सज्जन पुरुषोंका चित्त प्रफुल्लित होता है ॥ ८ ॥

सत्यार्थ (सच्चे) शास्त्रका लक्षण ।

जो जीवोंका हितकारी हो, जिसका हो न कभी खंडन ।

जो न प्रमाणोंसे विरुद्ध हो, करता होय कुपथखंडन ॥
वस्तुरूपको भली भांतिसे, बतलाता हो जो शुचितर।
कहा आप्तका शास्त्र वही है, शास्त्र वही है सुन्दर तर ॥९॥

जो जीवोंका हितकारी हो, जिसका कभी खंडन न हो जो प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाणोंसे विरुद्ध न हो, कुमार्गका खंडन करनेवाला हो, वस्तुका सत्यार्थ स्वरूप बतानेवाला हो, ऊपर कहे हुये सत्यार्थ आप्तका कहा हुवा हो वही सच्चा शास्त्र है ॥९॥

सत्यार्थ गुरुका लक्षण।

विषय छोड़कर निरारंभ हो; नहीं परिग्रह रक्खे पास।
ज्ञान ध्यान तपमें रत होकर, सब प्रकारकी छोडै आस ॥
ऐसे ज्ञान ध्यान तप भूषित, होते जो सांचे मुनिवर।
वही सुगुरु हैं, वही सुगुरु हैं, वही सुगुरु हैं उज्जलतर ॥१०॥

जो पंचेंद्रियोंके विषयकी आशा, आरंभ, व परिग्रहसे रहित हो तथा ध्यान तपमें लवलीन हो, वही सत्यार्थ (सच्चा) गुरु है ॥ १० ॥

——:०:——

२३. पृथिवी।

——:०:——

इस भारतवर्षके प्राचीन विद्वानोंने इस पृथिवीको थाली की समान गोल और चपटी तथा स्थिर माना है और सूर्यचंद्रादि ग्रह नक्षत्र तारा ये सब ग्रह पृथिवीके उपरि

भागमें सुमेरु पर्वतके (जो कि पृथिवीके बीचमें लाख योजन ऊंचा दण्डाकार स्थित है) चारों तरफ पूर्वसे दक्षिण पश्चिम होकर फिरते हुए माने हैं और इसी मान्य और ग्रहोंकी चाल परसे गणित करके वे हिसाव निकालते हैं कि— अमुक दिन और अमुक समय पर चन्द्रग्रहण और अमुक दिन सूर्यग्रहण इतना होगा इत्यादि तिथिवार नक्षत्र आदि सब बातैं ठीक २ पंचांग बनाकर बताते हैं परन्तु आजकलके इयुरोपीय विद्वानोंने अनेक यन्त्रोंके द्वारा निरीक्षण करके पृथिवीको नारंगीकी तरह गोल और गाडीके पइयेकी तरह पश्चिमसे पूर्वकी तरफ फिरती हुई माना है और सूर्यको स्थिर माना है तथा चंद्रादि ग्रहोंको पृथिवी और सूर्यकी चारों तरफ फिरते हुए माना है। वे भी इसी मान्य परसे (पृथिवीकी चाल परसे) सूर्य चन्द्रमाके ग्रहण आदिका निश्चित समय पहिलेसे ही निर्दिष्ट कर देते हैं यद्यपि इन विद्वानोंने इस बातको प्रत्यक्ष वा अनुमान द्वारा सिद्ध करके नकसा खींचकर सर्व साधारणको समझा दिया (वहका दिया) है कि पृथिवी गोल है, घूमती है परन्तु अब भी बडे २ विद्वानोंने इस बातको स्वीकार नहिं किया है उनको पूर्णतया विश्वास है कि पृथिवी स्थिर है और थालीकी समान वा पहाड़की समान बीचमेंसे उठी हुई क्षार समुद्रके बीचमें टापूकी समान गोल है और इस बातको सिद्ध करनेके लिये वहुतसे प्रमाण भी दिये हैं। आज कल

की नयी शोधसे अनेक इयुरोपीय विद्वानोंने सूर्यको चलता हुवा भी मान लिया है तोभी अभी तक सर्व साधारणका भ्रम अभी दूर नहिं हुवा है क्योंकि अभी यह विषय विवादग्रस्त है। परन्तु जबतक यह विषय भले प्रकार निर्णीत न हो जाय तबतक हमें अपने प्राचीन आचार्योंके कथनानुसार पृथिवीको स्थिर थालीकी तरह गोल मानना ही ठीक है। क्योंकि प्राचीन आचार्यगण जिनवचनोंके अनुसार ही कथन करते हैं और जिनेन्द्र भगवान कभी अन्यथा वादी नहीं होते।

——:o:——

२४. कडार पिंगलकी मृत्यु।

——:o:——

पूर्वकालमें एक कांपिल्य नामका नगर था उसके राजाका नाम नरसिंह था। नरसिंहराजा बडा बुद्धिमान धर्मात्मा न्यायनीतिके साथ राज्यका पालन करता था, उस राजाके मंत्री सुमतिके पुत्रका नाम था कडारपिंगल। यह कडारपिंगल बड़ा कामी दुराचारी था। इसी नगरमें एक सज्जन व्यापारी कुवेरदत्त नामका सेठ था उसकी स्त्री प्रियंगु सुंदरी वडी रूपवती सरलस्वभावकी पुण्यवती धर्म्मात्मा थी।

एकदिन कडारपिंगलने प्रियंगुसुंदरीको मंदिरजी जाते देखा और वह कामी उसपर मोहित हो गया। माताने दुःख

और उदासीका कारण पूछा तो वेशमेंने वेखबके माताको कह दिया कि मुझे यदि कुवेरदत्तकी स्त्री प्रियंगुसुंदरी नहिं मिली तो मैं शीघ्र ही मरजाऊंगा। मंत्रीकी स्त्रीने यह वात कडारपिंगलके पिताको कह सुनाई। पिताने पुत्रकी मृत्युके भयसे उसको उपदेश देकर परस्त्रीसे विरक्त करनेकी जगह उसे थोडे दिन वाद उसकी प्राप्ति करादेनेकी आशा दिला भेजी।

दो चार दिन वाद सुमति मंत्रीने राजाको वहकाया कि हजूर रत्नद्वीपमें एक किंजल्क नामका पक्षी होता है वह जिस शहरमें रहता है उस शहरके आस पास महामारी दुर्भिक्ष रोग अपमृत्यु आदि नहिं होते। तथा उस शहरपर शत्रुओंका चक्र नहिं चल पाता, चोर डाकू भी किसी प्रकार की हानि नहिं पहुंचाते और महाराज उस पक्षीकी प्राप्ति भी सहजमें हो सकती है, क्योंकि अपने नगरका प्रसिद्ध सेठ कुवेरदत्त प्रायः जहाजके द्वारा उस द्वीपकी तरफ जाया आया करता है सो उस सेठको भेजकर अवश्य एक जोड़ा पक्षी मगाना चाहिये। राजाने मंत्रीकी वात सत्यार्थ मानकर तुरत ही कुवेर सेठको रत्न द्वीपमें भेजकर पक्षी लादेनेको स्वीकार कराकर जहाजका प्रबंध कर दिया।

कुवेरदत्तने घरपर आकर यह परदेश गमनकी वात अपनी स्त्रीसे कही तो स्त्रीका माथा ठनका और विचार करके बोली प्राणेश्वर! ऐसा पक्षी होना असंभव है। इस वातमें मुझे कुछ

दालमें काला दिखता है, कारण मैं एक दिन मंदिरजी गई थी तौ मंत्रीके पुत्र कडारपिंगलने मुझे वडी वुरी निगाहसे देखा था सो कदाचित् मंत्रीने राजाको वहकाकर आपको परदेश भिजवाया है, आपके पीछे मंत्रीका पुत्र शायद उपद्रव करै तौ ताज्जुव नहीं, अतः आप जहाजोंको तौ रवाना कर दें और दो चार दिन यहांका हाल जाने वाद दूसरे जहाजसे जावें तौ ठीक हो। कुवेरदत्तको स्त्रीकी यह सलाह ध्यानमें जच गई, उसने जहाज रवाना करा दिया, और प्रसिद्ध करा दिया कि कुवेरदत्त रत्नद्वीपको चले गये, परंतु रात्रिमें अपने घर आकर छिप गया।

कडारपिंगलको तौ दिन पूरा होना मुशकिल हो गया था, रात होते ही वह कुवेरदत्त शेठके घर चल दिया। प्रियंगुसुंदरीने भी एक पायखानेके ऊपरकी छतपर आदमी जाने लायक छिद्र कराकर उसपर विना वुना हुआ पलंग विछा कर ऊपरसे दरी गलीचा वगेरह विछा दिया और सब शृंगार करके कडारपिंगलकी वाट देखने लगी जव कडारपिंगल आया तो वडे आदरके साथ ऊपर लेजाकर पलंगपर वैठनेको कहा। कडारपिंगल वैठते ही अँधेरे पायखानेके कोठमें जा गिरा। जब वहांकी दुर्गंधकी लपट नाकमें घुसी तौ मालूम हुआ कि हम कैसी जगह (भयानक नरकमें) पड़े हैं इधर कुवेर-दत्तने उसी तरह उस कुएमें कैद रखकर जीवित रखनेका प्रवन्ध करके रत्नद्वीपका रास्ता लिया। ६ महीने वाद

बहुतसा धन उपार्जन करके शेठ आया और घरपर पहुंच-कर कडारपिंगलको उस पायखानेमेंसे निकलवाकर गोंदके द्वारा रत्नद्वीपसे लाये हुये अनेक पक्षिओंकी पांखें चिपकाकर एक विकटाकार पक्षी बनाकर पिंजरेमें बंद करके राजाके यहां ले गया, और अर्ज किया कि हजूर आपने जो किंजल्क नामका पक्षी मंगाया था सो यह हाजिर है। फिर एकांतमें जाकर सब सच्चा २ हाल कह सुनाया तो राजा कडारपिंगलपर बहुत ही गुस्सा हुआ और उसी वक्त काला मुंह करके गधेपर चढाकर सारे शहरमें फिराकर और उसकी बदमासीका फल सुनाकर जानसे मार डालनेका हुकम दिया। खोटे परिणामोंसे मरकर पापी सीधा नरक पहुंचा। अतएव कुशील आदि पाप कर्मोंसे विरक्त होकर सबको सदाचारी बनना चाहिये।

——:०:——

२५. शुद्ध जल।

——:०:——

स्वास्थ्य रक्षाके लिये जिस प्रकार निर्मल वायुकी आवश्यकता है उसी प्रकार निर्मल जलकी भी अतिशय आवश्यकता है। यद्यपि आजकल बडे बडे शहरोंमें जलको परिष्कृत और निर्मल करके नलके (जल कलके) द्वारा घर २ पहुंचाया जाता है परंतु उसके द्वारा उच्च कुलकी सनातनी

धार्मिक क्रियाओंका पालना, शूद्रों वा चर्बी चमड़ेसे अस्पर्शित जलका प्राप्त होना असंभव समझ अनेक ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य जैनजातिवाले नलका जल पीनेमें घृणा करते है, तथा शहरोंके शिवाय छोटे २ गावों और कसबोंमें नल है ही नहीं, जो जलकी प्राप्ति हो। इस कारण शहरनिवासी बाबुओंके सिवाय प्रायः सबहीको कूप, नदी या तालावका जल पीना पड़ता है जो कि बहुधा अपरिष्कृत (मैला) रहता है, इसलिये जलको शुद्ध (प्रासुक) करनेकी क्रिया सबको अवश्यमेव जान लेना चाहिये, क्योंकि अपरिष्कृत जल पीनेसे वा वस्त्रादिक धोने न्हाने भोजनादि पदार्थोंमें व्यवहार करनेसे हमारे स्वास्थ्यको बहुत भारी हानि होती है। चाहे तालावका जल हो, चाहे खड्डेका हो वा दुर्गंधमय कूएका जल हो, वा हाड मांस मलवाहिनी नदियोंका जल हो, केवलमात्र प्यास मिटाना कर्त्तव्य है ऐसा समझकर जो प्यास मिटानेकी इच्छासे जैसा तैसा जल पीलेना है सो ऐसा जलपान करना विषपान करनेकी समान है। क्योंकि नित्य इसी प्रकारके जल पीनेसे शरीरमें अनेक प्रकारके रोग हो जाते हैं, और शीघ्र ही हम लोगोंको कालके गालका ग्रास बनना पडता है जलको निर्मल करनेकी क्रिया कुछ कठिन भी नहीं है, किंचिन्मात्र परिश्रम करनेसे ही निर्मल जलकी प्राप्ति भले प्रकार हो सकती है।

जलको निर्मल करनेके लिये कोयले और वालु रेत

ये दो पदार्थ मुख्य हैं। तालाव या बावडीका जल, स्नान करके कपडे धोने, वर्तन माजने वगैरहसे दूषित नहिं करके यदि यथेष्ट परिमाणसे उसमें कोयले ओर वालु डाल दिया जाय तो उस तालाव और बावडीका जल सदैव निर्मल रह सकता है इसके सिवाय कूएमें भी वालू और कोयले डाल दिये जांय तो उसका जल भी विशेष दूषित नहिं होता। परन्तु सबसे सीधा उपाय यह है कि चाहे कूपका जल हो चाहे नदी तालावका जल हो, उसे विना ग्रंथिके (जिसमें कि सूर्यका प्रतिबिंब नहिं दीखे) दोहरे कपडेसे छान ले फिर उसमें लोंग इलायची जावत्री वादाम मेंसे किसी एक का चूर्ण एक घडे जलमें छह मासेके अंदाज डाल दे तो वह जल दो पहर तक निर्मल रहेगा। क्योंकि जलमें स्वास्थ्य बिगाडनेवाले जो असंख्य जीव अणुवीक्षण यंत्रसे चलते फिरते नजर आते हैं उनमेंसे प्रायः सभी जीव उक्त प्रकार के छन्नेसे छानने पर निकल जांयगे और लवंग इलायची आदिका चूर्ण डालनेसे अन्यान्य समस्त दोष नष्ट हो जाने के सिवाय दो पहर तक उस जलमें कीट (जीव) उत्पन्न नहिं हो सकते। इसके सिवाय उक्त प्रकारके छन्नेसे छान कर अग्नि पर गर्म करके रख देनेसे भी जल बहुत निर्मल हो जाता है परंतु उसमें भी दोपहरके वाद फिर वह जल नहिं रखना चाहिए अर्थात् दो पहरसे पहिलेही वह जल वर्त्त देना चाहिये या फेंक देना चाहिये। फिर या तो उक्त

प्रकारके छन्नेसे छानकर ताजा जल दो मुहूर्त तक (१॥ घंटे तक) पीना चाहिये। अथवा उस छने हुए जलमें लौंग इलायची वगेरह का चूर्ण डालकर काममें लाना चाहिये। क्योंकि छने हुए ताजे जलमें भी दो मुहूर्त्तके वाद जीव फिर उत्पन्न हो जाते हैं और जल वादीयुक्त हो अस्वास्थ्यकर हो जाता है। यदि चौमासेमें नदी तालाव आदिका मिट्टी मिला हुवा वहुत मैला जल हो तौ उसमें थोडासा फिटकडी या निर्मलिका चूर्ण डालकर घंटे भरको रख देना चाहिये। जिससे गाद नीचे जम जायगी तव ऊपरका निर्मल जल दूसरे वर्त्तनमें छानकर ले लेना चाहिये, और उसमें लौंग आदिका चूर्ण डालकर अथवा गर्म करके दोय पहर तक वर्तना चाहिये। इसप्रकार जलको प्रासुक करके वर्तनेसे अनेक प्रकारके रोगोंसे वच सकते हैं. इसमें कोई विशेष परिश्रम नहिं है थोडासा परिश्रम करनेहीसे निर्मल प्रासुक जलकी प्राप्ति हो सकती है।

२६। श्रावकाचार दूसराभाग।

सम्यक्त्वके आठ अंग तीनमूढ़ता और आठमद।

१। निःशंकित अंग।

तत्त्व यही है ऐसा ही है, नहीं और नहिं और प्रकार।
जिनकी सन्मारगमें रुचि हो, ऐसी मनो खड्गकी धार॥१॥

है सम्यक्त्व अंग है पहिला, निःशंकित है इसका नाम।
इसके धारण करनेसे ही, अंजन चौर हुआ सुखधाम ॥ ११ ॥

तत्त्व (वस्तुका स्वरूप) यही है, इसी प्रकार है और नहीं है अन्य प्रकारका भी नहीं है इस प्रकार खड्गकी आबके समान सन्मार्गमें अचल श्रद्धान होना सो निःशंकित अंग है। इस अंगमें अंजन चौर प्रसिद्ध हुवा है ॥ ११ ॥

२ । निःकांक्षित अंग ।

भांति भांतिके कष्ट सहे भी, जिसका मिलना कर्माधीन।
जिसका उदय विविध दुखयुत है, जो है पाप बीज अति हीन॥
जो है अंतसहित लौकिक सुख, कभी चाहना नहिं उसको।
निःकांक्षित यह अंग दूसरा, धाराऽनंतमती इसको ॥ १२ ॥

अनेक कष्टोंसे मिलनेवाला, पुण्यकर्मके आधीन जिसके उदयसे बीच २ में दुःख भी होता रहता है, पापका कारण और नाशवान् ऐसे संसारी सुखमें इच्छा नहिं रखना सो दूसरा निःकांक्षित अंग है इसके पालनेमें अनंतमती नामकी शेठकी पुत्री प्रसिद्ध हो गई है ॥ १२ ॥

३ । निर्विचिकित्सित अंग ।

रत्नत्रयसे जो पवित्र हो, स्वाभाविक अपवित्र शरीर।
उसकी ग्लानि कभी नहिं करना, रखना गुणपर प्रीत सधीर
निर्विचिकित्सित अंग तीसरा, यह सुजनोंका प्यारा है।
पहिले उदायन नरपतिने, नीके इसको धारा है ॥ १३ ॥

रत्नत्रयसे (सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रसे) पवित्र और स्वभावसे ही अपवित्र रहनेवाले शरीरमें ग्लानि नहि करकें उसके (सम्यग्दष्टिके) गुणोंमें ही प्रीति करना सो निर्विचिकित्सा नामका तीसरा अंग है। इस अंगको पालकर उदयन राजा प्रसिद्ध हो गया है।

४। अमूढ दृष्टि अंग।

दुखकारक है कुपथ, कुपंथी, इन्हे मानना नहिं मानसे।
करना नहिं संपर्क सत्कृती, यश गाना नहिं वचनोंसे॥
चौथा अंग अमूढ दृष्टि यह, जगमें अतिशय सुखकारी।
इसको धार रेवती रानी, ख्यात हुई जगमें भारी॥ १४॥

कुमार्ग और कुमार्गमें चलनेवालोंकी मन वचन कायसे प्रशंसा स्तुति नहिं करना सो अमूढदृष्टि नामका चौथा अंग है। इस अंगमें रेवती राणी प्रसिद्ध हो गई है॥ १४॥

५। उपगूहन अंग।

स्वयंशुद्ध जो सत्य मार्ग है, उत्तम सुख देनेवाला।
अज्ञानी असमर्थ मनुज कृत, उसकी हो निंदा माला॥
उसे तोड़कर दूर फेंकना, उपगूहन है पंचम अंग।
इसे पाल निर्मल जस पाया, सेठ जिनेंद्रभक्त सुखसंग॥१५॥

स्वयंशुद्ध उत्तम सुख देनेवाले सत्यार्थ जैन मार्गकी अज्ञानी वा असमर्थ जनोंके द्वारा निंदा होती हो तो उस निंदाको दूर कर देना अर्थात् परके अवगुण और अपने गुणों

को ढक देना सो पांचवां उपगूहन अंग है। इस अंगमें जिनेंद्र-भक्त नामका शेठ प्रसिद्ध हो गया है ॥ १५ ॥

६। स्थितिकरण अंग।

सद्दर्शनसे सदाचरणसे, विचलित होते हों जो जन।
धर्मप्रेमवश उन्हे करैं फिर, सुस्थिर देकर तन मन धन॥
स्थितिकरण नामक यह छट्ठा, अंग धर्म द्योतक प्रियवर॥
वारिषेण श्रेणिकका बेटा, ख्यात हुवा चलकर इसपर॥१६॥

किसी कारणवश कोई धर्मात्मा सम्यग्दर्शन, सम्यक्-चारित्रसे चलायमान होकर भ्रष्ट होना हो तो उसको उपदेशादि देकर धर्ममें स्थिर कर देना सो छट्ठा स्थितिकरण नामका अंग है। इस अंगमें श्रेणिक राजाका पुत्र वारिषेण प्रसिद्ध हो गया है॥ १६ ॥

७। वात्सल्य अंग।

कपटरहित हो श्रेष्ठ भावसे, यथा योग्य आदर सत्कार।
करना अपने सधर्मियोंका, सप्तमांग वात्सल्य विचार॥
इसे पालकर प्रसिद्धि पाई, मुनिवर श्रीयुत विष्णुकुमार।
जिनका यश शास्त्रोंके भीतर, गाया निर्मल अपरंपार॥१७॥

अपने सहधर्मी भाईयोंका छल कपट रहित आदर सत्कार करके गुणोंमें प्रीति करना सो सातवां वात्सल्य अंग है। इस अंगमें विष्णुकुमार मुनि प्रसिद्ध हो गये हैं १७

८। प्रभावना अंग।

जैसें होवे वैसे भाई, दूर हटा जगका अज्ञान।
कर प्रकाश करदे विनाश तम, फैलादे शुचि सच्चा ज्ञान॥
तन मन धन सर्वस्व भले ही, तेरा इसमें लग जावै।
वज्रकुमार मुनींद्र सदृश तू, तब प्रभावना कर पावै॥१८॥

जिसप्रकार बन सकै उस प्रकार जगतका अज्ञान अंधकार दूर करके सत्यार्थ जैन धर्मका प्रभाव प्रगट करदेना सो प्रभावना नामका आठवां अंग है। इस अंगमें वज्रकुमार मुनिने प्रसिद्धि पाई है॥ १८॥

अंगहीन सम्यग्दर्शन कार्यकारी नहीं।

सम्यग्दर्शन सुखकारी है, भवसंतति इससे मिटती।
अंगहीन यदि हो इसमें तो, शक्ति नहीं इतनी रहती॥
विषकी व्यथा मिटा देनेको, शक्ति मंत्रमें है प्रियवर।
अक्षर मात्राहीन हुयेसे, मंत्र नही रहता सुखकर॥ १९॥

जिस प्रकार एक आध अक्षररहित मंत्र सांप वगैरह के विषको दूर करनेमें असमर्थ है उसी प्रकार अंगरहित मोक्षदाता सम्यग्दर्शन भी भवसततिको दूर करनेमें असमर्थ होता है॥ १९॥

१। लोकमूढता।

गंगादिक नदियोंमें न्हाये, होगा मुझको पुण्य महान।
ढेर किये पत्थर रेतीके, होजावैगा तत्त्व ज्ञान॥
गिरिसे गिरे शुद्ध होऊंगा, जलें आगमें पावनतर।

ऐसे मनमें विचार रखना, लोकमूढता है मिथ्यार ॥ २० ॥

गंगा जमुना आदि नदियोंमें न्हानेसे, तथा बालू और पत्थरके ढेर करने अथवा पर्वतसे गिरने वा अग्निमें जलनेसे पुण्य होता है ऐसा मानना सो लोकमूढ़ता है ॥ २० ॥

२। देवमूढता।

दई देवताकी पूजा कर, मन चाहे फल पाऊंगा।
मेरे होंगे सिद्ध मनोरथ, लाभ अनेक उठाऊंगा॥
ऐसी आशायें मनमें रख, जो जन पूजा करता है।
रागद्वेष भरे देवोंकी, देवमूढता धरता है॥ २१ ॥

इसका अर्थ सीधा है लड़के अपने आप अर्थ कह सकते हैं इसलिये नहि लिखा ॥ २१ ॥

३। गुरुमूढता।

नही छोडते गांठ परिग्रह, आरँभको नहिं तजते हैं।
भवचक्रोंके भ्रमनेवाले, हिंसाको ही भजते हैं॥
साधुसंत कहलाते तिसपर, देना इन्हे मान सत्कार।
है पाखंडि मूढता प्यारो, छोडो इसको करो विचार ॥२२॥

आरंभ परिग्रह और हिंसाके धारक संसार चक्रमें भ्रमण करनेवाले पाखंडी तपस्वियोंका आदर सत्कारादि करना सो गुरुमूढता है ॥ २२ ॥

आठ मद।

ज्ञान जाति कुल पूजा ताकत, ऋद्धि तपस्या और शरीर।
इन आठोंका आश्रय करके, जो घमंड करना मद वीर ॥

मद्में आ निजधर्मि जनोंका, जो जन करता है अपमान ।
वह स्वधर्मके मान भंगका, कारण होता है अज्ञान ॥ २३ ॥

विद्या, जाति, कुल प्रतिष्ठा, बल, धन, तपस्या और रूप इन आठोंका घमंड करके अन्य धर्मात्माओंका अनादर करता है वह अपने ही धर्मका अनादर करता है ॥ २३ ॥

पापास्रव निरोधका फल।

अगर पापका हो निरोध तौ, और संपदासे क्या काम ।
अगर पापका आस्रव हो तौ, और सपंदासे क्या काम ॥
मित्रो यदि पहिला होगा तौ, दुखका उदय नहीं होगा ।
यदि दुसरा होगा तौ संपदू होनेपर भी दुख होगा ॥ २४ ॥

यदि पापका निरोध है तौ दूसरी संपदाकी कोई जरूरत नहीं, क्योंकि पापके निरोध होनेसे दुख न हो कर सुख ही होगा और यदि पापका आगमन है तौ दूसरी संपदा होने पर भी दुःख होगा ॥ २४ ॥

२७. अंजन चोरकी कथा।

राजगृही नगरीमें एक जिनदत्त नामके बडे धर्मात्मा श्रेष्ठी थे, उनको आकाशगामिनी विद्या प्राप्त थी। वे प्रतिदिन आकाशमार्गसे अकृत्रिमचैत्यालयोंके[१] दर्शन करनेको

१ अनादिकाल से बनेहुये ४५८ मंदिर इस मध्यलोकमें सुमेरु आदि पर्वतोंपर हैं।

जाया करते थे सो सोमदत्त नामके मालीने एकदिन शेठ-
से पूछा कि आप प्रतिदिन प्रातःकाल ही कहां जाया करते
हैं तब जिनदत्त शेठने कहा कि मुझे अमितप्रभ और विद्युत्प्रभ
नामके दो देवोंने खुश होकर आकाशमें चलनेकी विद्या-
प्रदान की है सो मैं इसीके प्रभावसे अकृत्रिम चैत्यालयोंके
दर्शनपूजन करनेको जाया करता हूं और उन देवोंने कृपा
करके इसविद्याके सिद्ध करनेकी विधि भी बता दी है।
तब सोमदत्तने कहा कि कृपा करके मुझे उसकी विधि बतादें
तौ मैं भी आकाशगामिनी विद्या सिद्ध करकें प्रतिदिन आपके
साथ अकृत्रिम चैत्यालयोंके दर्शन करकें अपनी इच्छा पूर्ण करूं
जिनदत्त शेठने कहा—कृष्णचतुर्दशीकी अंधेरी रातमें श्मशान
भूमिमें वटवृक्षकी पूर्वतरफकी डालीपर एकसौ आठतनीका
दूबकी घासका छींका वांधकर और उसके नीचै जमीनपर
चंदनादिसे चर्चित करके चमचमाते हुए छुरी कटारी वगेरह
तीक्ष्ण शस्त्रोंको सीधे मुखसे गाड़ देना फिर उस छींकेपर
वैठकर नमस्कार मंत्र पढना और नमस्कार मंत्र पूरा होते ही
एक रस्सी काट देना इसप्रकार एकसो आठवार मंत्र जपकर
एकसो आठ रस्सी काट देना तो आकाशगामिनी विद्या
सिद्ध हो जायगी।

सोमदत्तने वैसा ही किया और नमस्कार मंत्र जापकरकें
प्रथम रस्सी काटनेको तैयार हुआ तो नीचें चमचमाते हुए
शस्त्र देखकर डरगया और मनमें शंका होगई कि शायद जिन-

दत्त शेठका कहना झूंठ हो तो मैं व्यर्थ ही मारा जाऊंगा ऐसी शंका करके नीचे उतर आया परंतु फिर विचार हुवा कि जिनदत्त सेठ बडे धर्मात्मा हैं, दयावान हैं वे मुझे झूंठ बोलकर मारनेका उपदेश क्यों देने लगे, मेरे मारनेसे उनका क्या उपकार होगा। ऐसा समझकर फिर वटपर चढा और मंत्र पढकर रस्सी काटनेको उद्यत हुवा कि फिर शंका होगई इसी प्रकार वह शंकित होकर पेडपर तथा छींकेपर चढने उतरने लगा।

इधर एक अंजन चोर था वह अंजना सुंदरी वेश्याके यहां जाया करता था। वेश्याने एकदिन प्रजापाल राजाकी रानीके गलेमें रत्नजडित सुवर्ण हार देख पाया। जब अंजन चोर रात्रिमें वेश्याके घर आया तो वह बोली कि रानीके गलेका हार मुझे ला दो तो मैं तुमसे बोलूं नहीं तो नहीं। चौरने कहा कि यह कौनसी बडी बात है, उसीवक्त राजाके महलमें चला गया और सोती हुई रानीके गलेसे हार उताकर चल दिया परंतु पहरेदारोंको चोर तो नहीं दीखा केवल हारका प्रकाश वा चमक दिखने लगी सो यह कोई अंजन चौर है, रानीसाहबका हार चुराकर लेजाता दिखता है, समझ उसे पकडकर खींचातानी करने लगे। चौरने हार छोडकर जान बचाकर भागना शुरू किया। राजाके पहरेदार भी उसका पीछा करने लगे। वह चौर भागता भागता सोमदत्तके पास पहुंचा और उसे वृक्षसे चढते उतरते देख पूंछने

लगा कि—यह क्या बात है जो ऐसा करते हो । सोमदत्त आकाशगामिनी विद्याकी प्राप्तिका सब हाल कह कर बोला कि मुझे सेठकी बातपर दृढ़ विश्वास (श्रद्धान) नहीं होता।

चोरने कहा कि मुझे वह मंत्र बताओ मैं इसे सिद्ध करूंगा क्योंकि चोरके पीछे तो राजपुरुष चले आरहे थे वे भी तो पकडकर शूली देदेंगे इससे तो यही मंत्र यदि सिद्ध हो जायगा तो बचाव हो सकता है। सोमदत्तने णमोकार मंत्र सुनाया, इतनेहीमें राजाके सिपाही आते दीखे इसने झट पट पेडपर चढकर छींकेमें बैठकर निःशंक हो "णमो ताणु कछू न जानुं शेठ वचन परमाणु" इसप्रकार अथवा "ताणं ताणं कछू न जाणं सेठवचन परमाणं" कह कर एक दमसे १०८ रस्सियें काट डालीं। रस्सी काटते ही आकाशगामिनी विद्याने ऊपरका ऊपर ही उठालिया और फिर कहा कि—बोलो क्या आज्ञा है? चोरने कहा कि जिनदत्त सेठके पास ले चल। जिनदत्त सेठ उस समय सुदर्शन मेरुके चैत्यालयमें दर्शन पूजनादि कर रहा था सो अंजन चोरने भी भावसहित दर्शन पूजन किये तत्पश्चात् जिनदत्तशेठको नमस्कार करके विद्यासिद्धिका सब हाल कहकर बोला कि आपके उपदेशसे ही मुझे आकाशगामिनी विद्या सिद्ध हुई है अब आपही मुझे संसारसे पार उतरनेका उपदेश दीजिये शेठने मुनि और गृहस्थ धर्मका उपदेश दिया। अंजनका चित्त मुनि धर्म अंगीकार करनेमें तत्पर हो गया तब चारण ऋद्धिके धारक मुनि

के पास दीक्षा लेकर तपस्या करके केवलज्ञान प्राप्त होकर कैलास पर्वतपर देह विसर्जनकर अंजन चोर निरंजन (मुक्त-वा सिद्ध) हो गये।

-:०:-

२८. पुद्गल परमाणु।

हमारे जैनसिद्धांतमें जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन ६ द्रव्योंमेंसे पुद्गल द्रव्यको मूर्तिक जड माना है, इसके सबसे छोटे खंडको (जिसका फिर खंड नहिं हो सकै) परमाणु कहते हैं और दो तीन चार आदि परमाणु-ओंके सूक्ष्म स्कंधोंको अणु वा द्व्यणुक स्कंध कहते हैं। इन सब परमाणुओंमें रूप रस गंध स्पर्श ये ४ गुण मुख्य और उत्तर गुण २० होते हैं और इन परमाणुओंमें न्यूनाधिक मिलकर अनंत प्रकारकी पर्यायें (अवस्थायें हालतें) पैदा करनेकी शक्ति होती है। दुनियांमें जितने पदार्थ दृष्टिगोचर होते हैं वे इन्हीं पुद्गल परमाणुओंके नानाप्रकारके परिणमन से पैदा हुये हैं।

आज कलके वैज्ञानिक विद्वानोंने अपनी खोजसे अणुके भेद विशेषको एक ईथर नामका सूक्ष्म पदार्थ निर्णय किया है वह इंद्रियोंके अगोचर जगद्व्यापी है। किसी २ विद्वानका मत है कि यही एक आदिम अर्थात् मूलपदार्थ है इसीकी

पल्टनासे कितने ही मुख्य वा रूढ पदार्थोंकी सृष्टि हुई है। रूढ पदार्थ कितने ही क्यों न हों परंतु अधिकांश विद्वानोंने ६५ रूढ पदार्थ माने हैं। जैसें अम्ल, यवक्षार, अंगारक, स्वर्ण, रौप्य, लोह, ताम्र, जस्ता, रांगा, गंधक और पारा इत्यादिक। इन सब रूढ पदार्थोंको भूत तथा अयौगिक पदार्थ भी कहते हैं। क्योंकि इन पदार्थोंमें कोई दूसरा पदार्थ नहिं मिला है और जो पदार्थ दो तीन चार रूढ पदार्थों के योगसे बने हैं उनको यौगिक पदार्थ कहते हैं। यौगिक पदार्थ अनंत हैं। नदी, पहाड, वृक्ष, जल, वायु, पृथिवी, सूर्य, चंद्रमा, ग्रह, नक्षत्र, पित्तल, कांसा, काच, लवण इत्यादि समस्त पदार्थ जो हमारी दृष्टिगोचर होते हैं, वे इन्ही ६५ पदार्थोंके योगसे बने हैं।

इन रूढ पदार्थोंके उस खंडको परमाणु कहते हैं जिस का कि फिर खंड नहिं हो सके अर्थात् इन मूल पदार्थोंको तोडते २ इतने सूक्ष्म हो जावैं कि फिर उसमेंसे एक एक टुकडेका दूसरा टुकडा करना चाहें तौ नहिं हो सकै उसीको परमाणु कहते हैं परंतु वह परमाणु इतना सूक्ष्म है कि अब तक कोई भी विद्वान उसकी आकृति निश्चय नहिं कर सका है। इस समय अनेक अणुवीक्षण यंत्र तैयार हुये हैं, उनके द्वारा देखनेसे क्षुद्रसे क्षुद्र वस्तु भी बहुत बडी होकर दिखती है। उन अणुवीक्षण यंत्रोंके द्वारा उसके हिस्से करकें देखनेपर उसके इतने टुकडे हो जाते हैं कि फिर वे देखनेमें

नहिं आसकते । इसकारण अणुवीक्षण यंत्रद्वारा भी परमाणुका देखलेना अत्यंत असंभव है । एकसे अधिक मिले परमाणुओंको अणु कहते हैं और यौगिक पदार्थोंका अतिशय सूक्ष्म अंश भी अणु कहा जाता है क्योंकि उस एक अणुमें भी अनेक रूढ पदार्थोंके अंशोंका संयोग है ।

मकडीके जालमें जो सूत होता है उसमें अणुवीक्षण यंत्रके द्वारा देखनेसे ६ हजार तारोंसे भी अधिक तारोंका संयोग मालूम होता है । कीटाणु नामके जो सूक्ष्म प्राणी (जीव) हैं वे अणुवीक्षण द्वारा देखनेमें आते हैं । वे सब जीव जल, वायु, वर्फ और अन्न वगेरह द्रव्योंमें रहते हैं बल्कि जलमें तो ऐसे कीटाणु (त्रस) हैं कि उन करोडों जीवोंको इकट्ठा करने पर भी वालू रेतके एक कणकी बराबर नहिं हो सकते और उन जीवोंके भिन्न २ आकार हैं, रक्त मांस भी हैं । वे रक्त मांस भी अनेक परमाणुओंका एक पिंड (स्कंध) है । जब ऐसे सूक्ष्म जीव भी देखनेमें नहिं आते तब परमाणु तो अति सूक्ष्म है सो नेत्रगोचर नहिं हो सकता ।

एक मिरचको तोड़कर जीभपर लगाते हैं तो चरपरा मालूम होता है, परंतु उस मिरचका कोई अंश क्षय हुआ नहिं दीखता यानी मिरच ज्योंकी त्यों मालूम होती है । यदि मिरचका कोई अंश जिह्वाके नहिं लगा तो चरपराट कहांसे आया ? इससे सिद्ध होता है कि जिह्वापर जो चरप-

शट लगा सो अवश्य ही अनेक परमाणुओंका समूह है। इसी प्रकार सुगंधमय पदार्थके जब अणु हवाके साथ मिलकर हमारी नासिकामें प्रवेश करते हैं तो हमें सुगन्ध मालूम होती है। जैसे एक रत्ती कस्तूरीकी सुगन्धसे बहुत बडा घर २० वर्ष तक सुगंधित रह सकता है, फिर कस्तूरीको देखो तो उतनीकी उतनी ही पडी रहेगी। यदि उस कस्तूरीमेंसे निरंतर सुगंधमय असंख्य परमाणु नहिं निकलते तो किस प्रकार वह घर सुगंधित रह सकता है? अब विचार करो कि वे परमाणु एक रत्ती कस्तूरीमेंसे २० वर्ष तक बराबर निकलते रहे तो कितने सूक्ष्म होंगे। इसकारण परमाणु कितना छोटा है यह निर्णय करनेमें नहिं आ सकता परन्तु हमारे जैन ग्रन्थोंमें पूर्वाचार्योंने निश्चय किया है कि वह परमाणु षट्कोण रूपी है। पदार्थ विद्या पढनेसे परमाणुओंके अनेक प्रकारके स्वभाव व शक्तियें मालूम होती हैं और परमाणुओंके गुण व शक्तियें मालूम होनेसे सृष्टिकी रचना कैसें अपने आप अनादि कालसे होती विनशती आई है सो सब मालूम हो जाता है अतएव पदार्थ विद्याका अध्ययन भी करना परमावश्यकीय है।

२९. भूधरजैन नीत्युपदेशसंग्रह तीसरा भाग।

—:०:—

कर्त्तव्य शिक्षा।

मनहर।

देव सांचे मान, सांचो धर्म हिये आन,
सांचौं ही वखान[1] सुन सांचे पंथ आव रे।
जीवनकी दया पाल झूठ तजि चोरी टाल,
देख ना विरानी[2] वाल तिसना घटाव रे॥
अपनी वडाई परनिंदा मत कर भाई,
यही चतुराई मदमांसको बचाव रे।
साध षट कर्म साधु[3] संगतिमें बैठ वीर,
जो है धर्म साधनको तेरे चित्त चाव[4] रे॥ १॥

सत्यार्थ देव गुरु धर्मशास्त्रकी पहचान।

सांचो देव सोई जामें दोषको न लेश कोई,
वहै गुरु जाके उर काहुकी न चाह है।
सही धर्म वही जहां करुणा प्रधान कही,
ग्रंथ जहां आदि अंत एकसो निवाह है॥
ये ही जग रत्न चार इनको परख यार,
सांचे लेहु झूठे डार नरभोको लाह[5] है।

---

१ व्याख्यान अर्थात् शास्त्र। २ परकी स्त्री। ३ साधुओंकी वा सज्जनोंकी।
४ इच्छा—उत्कंठा। ५ लाभ।

मानुष विवेक विना पशुकी समान गिना,
तातैं याही बात ठीक पारनी सलाह है ॥ २ ॥

सांचे देवकी पहचान।

छप्पय।

जो जग वस्त समस्त, हस्त तल जेम निहारै।
जगजनको संसार,—सिंधुके पार उतारै ॥
आदि अंत अविरोधि, वचन सबको सुखदानी।
गुन अनंत जिहँ माहिं, रोगकी नाहिं निसानी ॥
माधव[1] महेश[2] ब्रह्मा किधौं, वर्द्धमान कै बुद्ध[3] यह।
ये चिह्न जान जाके चरन, नमो नमौं मुझ देव वह ॥ ३ ॥

यज्ञमें हिंसा निषेध।

कहै पशु दीन सुनि जग्यके करैया मोहि,
होमत हुतासनमें कौनसी बडाई है।
स्वर्ग सुख मैं न चहौं 'देहु मुझे' यौं न कहौं,
घास खाय रहौं मेरे यही मन भाई है ॥
जो तू यह जानत है वेद यौं बखानत है,
जग्य जरयो जीव पावै स्वर्ग सुखदाई है।
डारै क्यों न वीर यामैं अपने कुटुंब ही को,
मोहि जिन जारै जगदीसकी दुहाई है ॥ ४ ॥

१ विष्णु २ महादेव—शिव ३ बुद्धदेव।

संसारी जीवका चिंतवन।

चाहत है धन होय किसी विध, तौ सब काज सरै जियरा जी।
गेह चिनाय[1] करूं गहना कछु, ब्याहि सुता सुत बांटिय भाजी[2] ॥
चिंतत यौं दिन जांहि चले, जम आनि अचानक देत दगाजी।
खेलत खेल खिलारि गये, रहि जाय रुपी शतरंजकी बाजी ॥
तेज तुरंग[4] सुरंग भले रथ, मत्त मतंग[5] उतंग खरे ही।
दास खवास[6] अवास अटा, धन जोर करोरन कोश[7] भरे ही ॥
ऐसे बढे तौ कहा भयो ए नर, छोरि चले उठि अंत छरे[8] ही।
धाम खरे रहे काम परे रहे, दाम डरे रहे ठाम धरे[9] ही ॥ ९ ॥

अभिमान निषेध।

कवित्त मनहर।

कंचन भंडार भरे मोतिनके पुंज परे,
घने लोग द्वार खरे मारग निहारते।
जानं[10] चढि डोलत हैं झीने सुर बोलत हैं,
काहूकीहू ओर नेक नीके न चितारते ॥
को[11] लौं धन खांगे कोउ कहै यौं न, लांगे

---

१ चिनाकर—बनाकर २ विवाह वगेरह उत्सवोंमें जो मिष्टान्न बांटा जाता है उसे भाजी कहते हैं। ३ जमी हुई। ४ घोडा। ५ हाथी। ६ नाई वगेरह खुशामदी। ७ खजाना। ८ अकेलेही। ९ पडे रहे जहांके तहां। यान-सवरी ११ कब तक—धन खांयगे बहुत धन है कोई ऐसा मत कहो क्योंकि वेही फिर लांगे होकर नंगे पैर फिरैंगे कंगले बनकर पराये पैर (जूतिया) झाडकर उदर निर्वाह करैंगे।

तेई फिरैं पाँय नांगे कांगे पग झारते ।
एते पै अयाने[12] गरबाने रहैं विभौ[13] पाय,
धिक है समझ ऐसी धर्म ना विसारते ॥ ७ ॥
देखो भर जोवनमैं पुत्रको वियोग आयो,
तैसैं ही निहारी निज नारि काल मगमैं ।
जे जे पुण्यवान जीव दीसैंत[14] हैं यान ही पैं,
रंक भये फिरैं तेऊ पनही न पग मैं ॥
एते पै अभागे धन जीतवसौं धरैं राग,
होय न विराग जानै रहूगो अलग मैं ।
आँखिन विलोकि अंध[15] सूसेकी अंधेरी करै,
ऐसे राज रोगको इलाज कहा जगमैं ॥ ८ ॥

दोहा ।

जैन वचन अंजन वटी, आंजै सुगुरु प्रवीन ।
राग तिमिर तउ ना मिटै, वडो रोग लख लीन ॥ ९ ॥
जोई दिन कटै सोई आवमैं[16] अवश्य घटै,
बूंद बूंद बीतै जैसैं अंजुलीको जल है ।
देह नित छीन[17] होत नैन तेज हीन होत,

---

१२ अजान मूर्ख । १३ संपत्ति धन । १४ दीखते थे । १५ खरगोसकी समान अर्थात् खरगोसका कोई पीछा करता है तो थक जाने पर एक जगह आंख मीचकर निर्भय हो बैठ जाता है और अपने मनमें समझ लेता है कि अब मुझे कोई नहीं देखता । १६ आयुमें । १७ सिथल-पुरानी ।

जोवन मलीन होत छीन होत बल है ॥
आवै जरा नेरी तकै अंतक अहेरी अवै,
परभो नजीक जाय नरभो निफल है।
मिलकै मिलापी जन पूछत कुशल मेरी,
ऐसी दशा माहिं मित्र काहेकी कुशल है ॥ १० ॥

——:०:——

३०. अनंतमतीकी कथा।

——:०:——

अंगदेशमें चंपानामकी नगरीमें राजा वसुवर्धन राज करता था। इसी नगरमें एक प्रियदत्त नामका शेठ था उसकी स्त्रीका नाम था अंगवती और उनकी पुत्रीका नाम अनंतमती था।

सेठ प्रियदत्तने अष्टान्हिका पर्वमें धर्मकीर्त्ति आचार्यके पास आठ दिनका ब्रह्मचर्य व्रत लिया। खेलसे अनंतमती को भी ब्रह्मचर्यव्रत ग्रहण करवा दिया था।

जब अनंतमती विवाह योग्य बडी हो गई तो शेठने उसके विवाह करनेकी खट पट करना प्रारंभ की तब पुत्री अनंतमतीने कहा—मुझै तो आपने ब्रह्मचर्य व्रत दिलाया था! अब विवाह करनेसे क्या लाभ? पिताने कहा कि— मैंने तो खेलमें ब्रह्मचर्यव्रत दिया था, सो भी आठ दिन

---

१ निकट। २ यमराजरूपी शिकारी।

तक। अनंतमतीने कहा धर्म व व्रतमें भी कहीं हंसी ठट्टा वा क्रीडा होती है। मैंने तो आठ दिनकी बात नहिं सुनी थी मैंने तो हमेशहके लिये ब्रह्मचर्यव्रत धारण कर लिया था अब मेरे तो इस जन्ममें विवाह करनेकी सर्वथा निवृत्ति है। ऐसा कहकर वह विद्याध्ययनादि करती हुई धर्मध्यानमें अपना समय विताने लगी।

एक दिन वह बागमें झूला झूलती थी सो विजयार्द्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीके किन्नरपुरका विद्याधर राजा कुंडलमंडित अपनी सुकेशी भार्यासहित विमानमें बैठा हुआ जाता था सो वह अनंतमतीको देखकर उसपर मोहित हो गया और अपनी स्त्रीको घरपर रखकर फिरसे आकर रोती विलाप करती अनंतमतीको उठाकर ले गया परंतु अपनी स्त्रीको सामने आती देख डरसे पर्णलघु विद्याके द्वारा भयंकर जंगलमें छोड दिया। वहांपर उसको रोती हुई देखकर भीम नामके भिल्ल राजाने उसे अपनो वस्तीमें ले जाकर अपनी पट्टरानी बनाकर उसके साथ दुष्टता करना प्रारंभ किया परन्तु वहांके वनदेवताने उस भीम राजाको बडी भारी सजा दी। तब भीमने समझा कि यह कोई देवांगना है। अतः भीमने पुष्पक नामके व्यापारीको सौंपदी। उसने भी लोभ देकर उसे अपनी स्त्री बनाना चाहा परन्तु अनंतमती ने स्वीकार नहिं किया तब उसने अयोध्या नगरीमें लाकर कामसेन नामकी कुट्टनीको देदी। वह कुट्टनीके कहनेसे

किसी प्रकार भी वेश्या न हुई तब उसने सिंहराजको दिखा दी उसने रात्रिमें जबरदस्ती उससे व्यभिचार करना चाहा परन्तु अनंतमतीके व्रतके माहात्म्यसे नगरदेवताने उस राजा को खूब मार लगाई तब भयभीत होकर उसे घरसे निकाल दिया। तब रोती दुःख उठाती हुई कमलश्रीकांता अर्जिकाने श्राविका समझकर बडे आदरसे अपने पास रक्खा।

इसके पश्चात् अनंतमतीके शोक विस्मरणार्थ प्रियदत्त सेठ बहुतसे यात्रियों सहित तीर्थयात्रा करता २ अयोध्या में आया और अपने शाले जिनदत्त श्रेष्ठीके घर संध्या समय प्रवेश करके रात्रिमें अपनी पुत्रीके खो जानेकी बात कही। प्रातः काल ही वे तो सब बंदना भक्ति करने गये इधर जिनदत्त शेठकी स्त्रीने अनंतमतीको रंगसे चौक पूरने और रसोई करनेकेलिये अति चतुर समझ बुलाया सो अनंतमती सब कामकरके कमलश्रीकांताकी वस्तिकामें (धर्मशालामें) चली गई। जब कि बंदना भक्ति करके प्रियदत्त शेठ आया तो उसने आंगनमें चौकपूरना (मांडना) देखकर अनंत-मतीको याद करके गदगद स्वरसे अश्रुपात करते हुये जिनदत्तसे कहा कि-जिसने यह माडने (चित्र) खीचे हैं उसे मुझे दिखाओ। जिनदत्तने अनंतमतीको बुलाकर दिखाया प्रियदत्त और उसकी स्त्रीने अपनी खोई हुई पुत्रीको पाकर बडा आनंद पाया जिनदत्तने भी इनके संयोग पर बडा आनंद उत्सव किया। अनन्तमतीने कहा—हे पिता! अब मुझे तप

करनेके लिये आज्ञा प्रदान करैं। मैंने इस एकही भवमें संसारकी विचित्रता देख ली। तब पिताकी आज्ञा पाय कमलश्रीकांतिका अर्जिकाके पास दीक्षाग्रहण करके अर्जिका हो बहुत काल तपस्या करके अंतमें विधिपूर्वक सन्यास मरण करके स्त्रीलिंग छेदकर बारहवें स्वर्गमें जाकर देव हुई।

२१. आहार्य पदार्थ।

हमारे देशमें जो आहार किया जाता है वह शरीर रक्षाकी इच्छासे नहीं किया जाता. भूख लगी है, तकलीफ होरही है इसको मिटाना जरूरी है, ऐसा समझ जो मिला सो ठूंस कर पेट भर लिया करते हैं, शरीरको सतेज प्रबल और भले प्रकार पुष्ट रखनेकेलिये, तथा दीर्घायु होकर दैहिक सुख भोग करनेकेलियेही आहार करना चाहिये सो कोई नहिं समझते। जो कुछ मिला सो खालिया उससे चाहे शरीर नष्ट हो, चाहे वृद्धि हो उस तरफका कुछ भी विचार न रख शीघ्रताके साथ पेट भरके नित्यकी वेगार टाल देते हैं। नित्यका आहार करना एक सुखका मूल कारण है सो कोई भी नहीं समझते।

यदि किसीके यहांसे निमंत्रण [न्यौता] आता है तो प्रसन्न हो जाते हैं. और निमंत्रण देनेवालेके घर जाकर जितना पेटमें अट सक्ता खाकर अपने स्वास्थ्यको नष्ट कर देते हैं। इसके सिवाय हम लोगोंका रसोई घर प्रायः ऐसी बुरी अवस्थामें होता है कि उसके देखते ही घृणा आती है। ऐसी

घृणायुक्त जगहमें बैठ कर पेट भर लेते हैं। जिससे बहुत ही हानि होती है और हमेशहके लिये हम रोगग्रस्त हो दुःख उठाते हैं।

मनुष्य देहके लिये जिस प्रकारका आहार करना चाहिये उसका हम द्वितीय भागके २०वे पाठमें थोडासा विवरण लिख आये हैं। कि–"पुष्टिकर द्रव्य खाना चाहिये सो पुष्टिकर आहार बनानेमें कोई बहुत खर्च होता हो सो नहीं है। चने, अरहर, मूंग, उडद इत्यादिकी दाल मात्रमें ही पुष्टिकर शक्ति विद्यमान है इनमें थोडासा घी वा तैल मिलाकर खानेसे ही यथेष्ट पुष्टिकर वा सुंदर आहार हो सक्ता है। दूधमें सर्व प्रकारके पुष्टिकर पदार्थ हैं। इसको जहां तक बने अवश्य खाना चाहिये। इसके सिवाय गेहूं बाजरा यव आदि की रोटी घृत वा सकर (बूरा–चीनी) सहित खानेसे ही यथेष्ट पुष्टि हो सकती है। हमारे देशमें, दिनों दिन विलायतमें चले जानेके कारण प्रायः सभी खाद्य पदार्थ मँहगे भावसे बिकते हैं इसी कारण बहुधा खाद्य पदार्थमें खराब चीजें मिलाकर लोग विक्रय करने लग गये हैं अर्थात् घीमें चर्वी अर्वी आलु, केले, मूगफली नारियलका तेल, वगेरह, दूधमें पानी, तैलमें दूसरी तरह के तैल, गेहूंके आटे में जौ जवार व खराब गेहूंका आटा वगेरह अन्यान्य कम मूल्य के पदार्थ मिलाकर बेचने लगे हैं। सर्वथा निर्दोष वस्तु का मिलना कठिन हो गया है, इस कारण जिस प्रकारसे

ये खाद्य पदार्थ दूषित न हों, ऐसा उपाय करना चाहिये। जिस घरमें रसोई बने वह साफ सुथरा होना चाहिये। आस पासमें दुर्गंधका नाम निसान तक नहीं होना चाहिये परंतु सबसे अधिक इस नियम पर ध्यान रखना चाहिये कि दोवार थोडा थोडा खाना अच्छा है परंतु एक बारमें भूखसे अधिक खालेना अच्छा नहीं तथा विना भूखके कभी नहिं खाना चाहिये। यदि इस बातपर ध्यान रक्खोगे तो तुम बहुतसे रोगोंसे बचे रहोगे।

३२. उद्दायन राजाकी कथा।

कच्छ देशमें रौरव नामका नगर था। उसके राजा उद्दायन सम्यग्दृष्टि बडे धर्मात्मा और दानी थे, उनकी रानी का नाम प्रभावती था। वह भी सती धर्मात्मा पवित्र मनवाली थी। वह भी अपने समयको प्रायः दान, पूजा, व्रत, उपवास स्वाध्यायादिकमें विताया करती थी।

एक दिन सौधर्म स्वर्गके इन्द्रने अपनी सभामें धर्मोप-देश करते समय सम्यग्दर्शन और उसके आठ अंगोंका वर्णन विस्तारसे करते समय निर्विचिकित्सा अंग पालन करने वालोंमें उद्दायन राजाकी बडी प्रशंसा की। इंद्रके मुखसे एक मध्य लोकके मनुष्यकी प्रशंसा सुनकर वासव नामका देव उसी समय मध्य लोकमें आया और मुनिका वेश बनाकर आहारके समय उद्दायनके महलपर गया।

उस मुनिकी देहमें गलित कुष्टका बडा भारी रोग था, उसकी वेदनासे पैर इधर उधर पड रहे थे, सारे शरीर पर मक्खियें भिनभिना रही थीं समस्त शरीर विकृत हो रहा था और उसमें दुर्गंधकी लपटें आ रही थीं वह देव अपने मुनि-पणेकी ऐसी बुरी हालत दिखाते हुए उद्दायनके दरवाजे पर पहुंचा तो राजा, मुनि पर अपनी दृष्टि पडते ही सिंहासनसे उठकर आये और नवधा भक्तिसे उन्होंने उस मायावी मुनि को भोजनार्थ पडगाहा। तत्पश्चात् भक्तिपूर्वक प्रासुक आहार कराया। आहार कराके निवृत्त होते ही उस मुनिने मायासे बडा भारी दुर्गंधयुक्त वमन (उलटी) कर दी। उसकी दुर्गंधसे घबडाकर अन्य समस्त मनुष्य वहांसे भाग गये। परंतु राजा और रानी मुनिको संभाळ करते रह गये। रानी मुनिका अंग कपडेसे पोंछ रही थी कि कपटी मुनिने उस विचारी पर और भी बडी भारी दुर्गंधमय वमन कर डाली। राजा रानी कुछ भी ग्लानि नहिं करके उल्टा पश्चात्ताप करने लगे कि—हाय! हमने मुनि महाराजको प्रकृतिविरुद्ध भोजन दे दिया जिससे मुनिराजको इतना कष्ट उठाना पडा। हम लोग बडे पापी हैं जो ऐसे उत्तम पात्रको हमारे घर निरंतराय आहार नहिं हुआ। इस प्रकार अपनी निंदा करके अपने प्रमादपर बहुत ही खेद उन राजा रानीने प्रगट किया और प्राशुक जलसे सब शरीर पोंछ-कर साफ कर दिया। राजाकी ऐसी भक्ति देख वह देव

मुनिका भेष छोडकर प्रगट हुवा और राजाकी प्रशंसा कर के बोला कि तुम सचमुच ही सम्यग्दृष्टि हो, इन्द्रने तुमारे निर्विचिकित्सा अंगकी बडी भारी प्रशंसा की थी सो मैं परीक्षाके लिये यहां आया तो जैसी प्रशंसा थी वैसाही पाया इस मेरे अपराधको क्षमा करें जो आपको कष्ट दिया ऐसा कहकर स्वर्गको चला गया।

२३. श्रावकाचार तीसरा भाग।

सम्यग्दर्शनकी महिमादि।

सम्यग्दर्शनकी शुभ सम्पद्, होती है जिनके भीतर।
मातंगज हो कोई भी हो, महामान्य हैं वे बुधवर॥
गुदडीके वे लाल सुहाने, ढँको भस्मकी है आगी।
सम्यग्दर्शनकी महिमासे, कहैं देव ये बडभागी॥२५॥

सम्यग्दर्शनरूपी संपदा जिसमें हो वह चाहे चांडाल हो चाहे कोई भी हो, वह भस्मसे ढकी हुई अग्निके समान या गुदडीके लालकी तरह देवकी समान उत्तम माना गया है॥

सुंदर धर्माचरण कियेसे, कुत्ता भी सुर हो जाता।
पापाचरण कियेसे त्योंही, श्वानयोनि सुर भी पाता॥
ऐसी कोई नहीं संपदा, जो न धर्मसे मिलती है।
सब मिलती है, सब मिलती है, सब मिलती है मिलती है॥

इसका अर्थ सीधा है विद्यार्थी स्वयं कह सकते हैं।

जिनके दर्शन किये चित्तमें, उदय नहीं होवे समभाव।
जिनके पढने सुननेसे नहिं, उच्च चरित हो, हो न सुभाव॥
जिन्हें मान आदर्श चलेसे, सत्यमार्ग भूले पड जांय।
ऐसे खोटे देव शास्त्र गुरु, शुद्ध दृष्टिसे विनय न पांय॥

शुद्ध सम्यग्दृष्टि कुदेव कुशास्त्र कुगुरुको भय आशा प्रीति या लोभसे प्रणाम या विनय नहिं करते॥ २७॥

सम्यग्दर्शनकी मुख्यता।

ज्ञान शक्ति है ज्ञान बडा है, कोई वस्तु न ज्ञान समान।
त्यों चारित्र बडा गुणधारी, सब सुखकारी श्रेष्ठ महान॥
पर मित्रो! दर्शनकी महिमा, इन सबसे बढकर न्यारी।
मोक्ष मार्गमें इसकी पदवी, कर्णधार जैसी भारी॥२८॥

ज्ञान और चारित्रकी अपेक्षा सम्यग्दर्शन मुख्यतासे उपासना किया जाता है, क्योंकि सम्यग्दर्शन मोक्षमार्गमें खेवटियेकी समान अधिकतर सहायक है॥ २९॥

सम्यग्दर्शन नहिं होवै तो, ज्ञानचरित्र कभी शुभतर।
फलदाता नहि हो सकते, जैसे बीज विना तरुवर॥
सम्यग्दर्शन विना ज्ञानको, मित्रो समझो मिथ्याज्ञान।
वैसे ही चारित्र समझ लो, मिथ्याचरित सकलदुखखान

जिसप्रकार बीजके विना उत्पत्ति, स्थिति, वृद्धि वा फलोदय नहिं होता उसीप्रकार सम्यग्दर्शनके विना सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रकी उत्पत्ति, स्थिति, वृद्धि और

फलका लगना नहिं हो सकता। भावार्थ—सम्यग्दर्शनके विना ज्ञान तो मिथ्याज्ञान और चारित्र मिथ्याचारित्र कहलाता है॥ २९॥

मोही निर्मोहीका अंतर।

मोहरहित जो है गृहस्थ भी, मोक्षमार्ग अनुगामी है।
हो अनगार न मोह तजा तो, वह कुपंथका गामी है॥
मुनि होकर भी मोह न छोडा, ऐसे मुनिसे तो प्रियवर।
निर्मोही हो गृहस्थ रहना, है अच्छा उत्तम बहतर॥३०॥

निर्मोही (सम्यग्दृष्टि) गृहस्थ मोक्षमार्गी है किंतु मोहवान् मुनि नहीं। इसकारण मोहवान मुनिकी अपेक्षा निर्मोही सम्यग्दृष्टि गृहस्थ श्रेष्ठ है॥ ३०॥

भूत भविष्यत वर्त्तमान ये, कहलाते हैं तीनों काल।
देव नारकी और मनुज ये, तीनों जग हैं महाविशाल॥
तीनोंकाल त्रिजगमें नहिं है, सुखकारी सम्यक्त्वसमान
त्यों ही नहिं मिथ्यात्व सदृश है, दुखदायक लीजे सच मान।

तीनों काल (भूत भविष्यत् वर्तमान) और तीनों लोकमें (ऊर्ध्व मध्य पातालमें) सम्यग्दर्शनकी समान तो कोई जीवोंका हितकारी नहीं और मिथ्यात्वकी समान कोई अहितकारी नहीं॥ ३१॥

मित्रो जो सम्यग्दर्शनसे, शुद्धदृष्टि हो जाते हैं।
नारक, तिर्यक, षंढ स्त्रीपन, कभी नहीं वे पाते हैं॥

व्रतविहीन वे होवैं तौ भी, नीच कुलोंमें नहिं होते।
नहिं होते अल्पायु दरिद्री, विकृतदेह भी नहिं होते॥

तथा

विद्यावीर्य विजय वैभव वय, ओज तेज यश वे पाते।
अर्थसिद्धि कुलवृद्धि महाकुल, पाकर सज्जन कहलाते॥
अष्टऋद्धि नव निधि होती हैं, उनके चरणोंकी दासी।
रत्नोंके वे स्वामी होते, नृपगणके मस्तकवासी॥३३॥

सम्यग्दृष्टि जीव यदि अव्रती भी हों तौ वे मरकर नारकी, तिर्यंच, नपुंसक, स्त्री, नीचकुली, विकृत अंगवाले, अल्पायु और दरिद्री नहिं होते और विद्या (ज्ञान) वीर्य विजय, वैभव, कांति, प्रताप, यश, अर्थसिद्धि, कुलवृद्धिको पाकर, उच्चकुली, धर्म अर्थ काम मोक्षके साधक, मनुष्योंमें शिरोमणिभूत होकर अष्टऋद्धि नवनिधि चौदह रत्न और राजावोंके स्वामी होते हैं॥ ३२-३३॥

पाके तत्वज्ञान मनोरम, वे महान हैं हो जाते।
सुरपति नरपति धरणीपति औ, गणधरसे पूजा पाते॥
धर्म चक्रके धारक अनुपम, मित्रो तीर्थंकर होते।
तीनों लोकोंके जीवोंके, शरणभूत सच्चे होते॥ ३४॥

समीचीन दृष्टिसे पदार्थोंका स्वरूप निश्चय करनेवाले सुरपति, नरपति, और गणधरोंसे पूजा पाते हैं और धर्मके चक्रके धारक सब जीवोंको शरणभूत तीर्थंकर भगवान होते॥ ३४॥

बाधा शंका रोग शोक भय, जरा जहां है जरा नहीं।
जिसमें विधा सुख है अनुपम, जिसका क्षय है कभी नहीं॥
ऐसा उत्तम निर्मलतर है, शिवपद अथवा मोक्ष महान।
उसको पाते हैं अवश्य वे, जो जन सम्यग्दर्शनवान॥

इसका अर्थ स्पष्ट है इसलिये नहिं लिखा।

है देवेंद्र चक्रकी महिमा, कही नहीं जो जाती है।
सार्वभौमकी पदवीको सिर, महिपावली झुकाती है॥
सबपद जिसके नीचे ऐसा, तीर्थंकर पद है प्रियवर।
पा इन सबको शिवपद पाते, भव्य भक्त प्रभुको भजकर॥

सम्यग्दृष्टि भव्य इंद्रोंकी अपरिमित महिमा, अनेक राजाओंसे पूजनीय चक्रवर्ती पद और समस्त लोकको नीचे करने वाले तीर्थंकर पदको पाकर मोक्षको जाता है॥ ३६॥

——:०:——

२४. रेवती रानीकी कथा।

विजयार्द्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें मेघकूट नामका नगर है वहांके राजा कुछ विद्याओंके स्वामी चंद्रप्रभ अपने पुत्र चन्द्रशेखरको राज्य देकर दक्षिण मथुरामें जाकर गुप्ताचार्य मुनिके पास क्षुल्लक हो गये, एक समय वन्दनाके लिए उत्तर मथुराको जाते हुए उनने (चन्द्रप्रभ) गुप्ताचार्यसे पूछा कि आपको कुछ ख़बर तो नहिं कहना है। मुनिने कहा कि सुव्रत मुनिसे वंदना और महारानी रेवतीसे आशीर्वाद कह

देना किंतु इनके सिवाय ग्यारह अंगके धारी भव्यसेन वा अन्य और भी मुनि जो वहां थे उनके विषयमें जब मुनिजीने कुछ न कहा तो क्षुल्लकजीको संदेह होगया और फिर पूछा कि और तो कुछ नहिं कहना है ? उन्होंने उत्तरमें यही कहा कि नहीं, अब क्षुल्लकजीका और भी संदेह बढ गया पर इस बातका विचार करते हुए कि कोई कारण अवश्य होगा, वहांसे चल दिए और उत्तर मथुरामें पहुंचकर सुव्रत मुनिसे जिनका चारित्र और वात्सल्य अपूर्व था, गुप्ताचार्यके नमस्कारको सादर निवेदन किया. यह सुन कर उनने क्षुल्लकजीको धर्मवृद्धि की और कुछ वार्तालाप भी उनके साथ किया पश्चात् अपने संदेहको दूर करनेकेलिए भव्यसेनके पास पहुंचे परन्तु इनने उनके साथ वातचीत भी न की. क्षुल्लकजी वहीं पर चुपचाप बैठ गए. थोडी देरमें भव्यसेन अपने कमंडलुको उठाकर शौचके लिये वाहर निकले उसी समय क्षुल्लकजी भी उनके पीछे होलिए और थोडी दूर चलकर उनकी परीक्षाके लिए आगेका रास्ता हरयालीमय बना दिया जिस पर गमन करना मुनियोंके लिये जैनशास्त्रमें सर्वथा निषिद्ध है पर मुनिजीने इसका कुछ भी विचार न करके उसी पर दीर्घशंका करली। यह देखकर क्षुल्लकजीने उनके कमंडलुका जल सुखा दिया और अपनी विद्यासे सामने एक छोटासा तालाव बना दिया। मुनिने जब कमंडलुमें जल न पाया तौ सामनेके तालावसे ही अपनी

शौचनिवृत्ति करली। बस अब क्या था! क्षुल्लकजीको पूर्णतया विश्वास हो गया कि वह मिथ्यादृष्टि है इसलिए गुप्ताचार्य-जीने इन्हें नमस्कार नहीं कहा है। उस दिनसे क्षुल्लकजीने इनका नाम अभव्यसेन रख दिया और वहांसे चलकर रेवती रानीकी परीक्षा करनेके लिए चतुर्मुख ब्रह्माका रूप धारण करके पूर्वदिशामें सिंहासन पर बैठ गए। नगरवासी ब्रह्माजीका आगमन सुनकर वंदनाके लिये सकुटुंब चलदिए वहांका राजा वरुण और भव्यसेन भी गए परन्तु रेवती रानी मायामयी ब्रह्मा समझकर लोगोंके समझाने पर भी न गई।

दूसरे दिन चक्र गदा तलवार आदि लेकर चतुर्भुज विष्णुका रूप बना कर दक्षिण दिशामें जा बैठे पूर्वकी तरह फिर भी नगरवासी वंदनाके लिये गये किंतु रेवती रानी यह समझकर कि जैन शास्त्रोंमें नव नारायण ही बतलाये हैं जो कि हो चुके अब दसवां होना असम्भव है इसवास्ते वह फिर भी न गई।

तीसरे दिन क्षुल्लकजीने शिरमें जटा शरीरमें राख साथमें पार्वती को लेकर पश्चिम दिशामें बैलपर सवार होकर शंकर (महादेव) के रूपको दिखाया पुरवासी फिर भी वंद-नार्थ गये परन्तु जैनसिद्धांतमें ग्यारह ही रुद्र बतलाये हैं जो कि हो चुके हैं। अब बारहवां होना अशक्य है ऐसा समझ कर फिर भी वह न गई।

चौथे दिन उत्तर दिशामें मानस्तम्भ, गंधकुटी, बारह सभा, गणधर आदि झूठे समोसरणकी रचना की और आप

(क्षुल्लकजी) स्वयं तीर्थंकर बनकर धर्मोपदेश देने लगे। अबकी बार मनुष्योंका झुंड दूना दिखाई देरहा था और क्षुल्लकजी व इतर जनोंको विश्वास था कि रेवती जरूर आवेगी पर वह जैनशास्त्रकी ज्ञाता यह जानकर कि तीर्थंकर चौवीस ही होते हैं जो कि हो चुके हैं पच्चीसवां होना असम्भव है अतः लोगोंने बहुत समझाया पर वह न गई। जब क्षुल्लकजी इन परीक्षाओंसे निष्फल हो चुके तब एक दिन रोगसे क्षीण मुनिशरीर बनाकर भिक्षाके समय रेवतीके मकानके पास पहुंचे और वहां मायासे गिर पडे रेवतीने जब यह देखा तो शीघ्र दौडी और भक्तिसे उठाकर घरपर ले आई और आदरसे भोजन कराया परन्तु मायावी मुनि सब भोजन करगये और वहीं वमन कर दिया जिससे बडी दुर्गंध निकल रही थी परन्तु रेवतीने अपना ही कसूर ठहराया और चिंतवन करने लगी कि न जाने मैंने कैसा अपथ्य भोजन करा दिया है। यह सुनकर क्षुल्लकजीने अपनी माया समेटली और अपना खास रूप बनाकर रेवतीसे गुप्ताचार्य की तरफसे आशीर्वाद कहा और पूर्व वृत्तांतको कहकर उसके अमूढदृष्टि अंगकी बडी प्रशंसा की और फिर अपने स्थानको चले गये, इधर वरुण राजा नयकीर्ति पुत्रको राज्य देकर तपश्चरण कर चौथे स्वर्गमें देव हुए और रेवती भी तप कर पाचवें स्वर्गमें देव हुई।

पूर्वोक्त कथाका सारांश यही है कि खोटे खरे तत्त्वों की

पहिचान कर मूढताकी तरफ न झुकना यही निमूढता अंग है जैसा कि रेवती रानीके दृष्टांतसे ज्ञात हुआ।

—:०:—

३५. भूधरजैन नीत्युपदेशसंग्रह चौथा भाग।

सातों वार गर्भित षट्कर्मोपदेश और सप्तव्यसन निषेध।

छप्पय।

अघ अँधेर[1] आदित्य, नित्य स्वाध्याय करिज्जै।
सोमोपम[2] संसार तापहर, तप करलिज्जै।
जिनवर पूजा नियम करहु, नित मंगल[3] दायनि।
बुध[4] संयम आदरहु, धरहु चित श्रीगुरुपायनि।
निजवित्त समान अभिमान विन, सुकर[5] सुपत्तहि[6] दान कर।
यों सनि[7] सुधर्म षट्कर्म भनि, नरभौ लाहो लेहु नर॥

दोहा

येही छह विधि कर्म भज, सात विसन तज वीर।
इसही पैंडे[8] पहुंचि है, क्रम क्रम भवजल तीर।

१ पापरूपी अंधेरेको मिटानेके लिये स्वाध्याय आदित्य (सूर्य) के समान है। २ संसाररूपी तापको हरनेके लिये तप सोम (चंद्रमा) के समान है। ३ भगवानकी नित्य पूजा करना मंगलदायनी है। ४ हे पंडित जन। ५ शुक्रवार अथवा अच्छे हाथसे। ६ सुपात्रको। ७ शनिवार अथवा धर्ममें सनिकर अर्थात् मग्न होकर। ८ इसी मार्गसे।

सप्तव्यसन। दोहा।

जूआखेलन मांस मद, वेश्या विसन शिकार।
चोरी पररमनी रमन, सातों पाप निवार ॥ ६ ॥

जुवानिषेध छप्पय।

सकल पाप संकेत, आपदा हेत कुलच्छन।
कलह खेत दारिद्र देत, दीसत निज अच्छन[1]।
गुनसमेत जस सेत, केतरवि रोकत जैसैं[2]।
औगुननिकर निकेत[3], लेत लखि बुधजन ऐसैं॥
जूआ समान इह लोकमैं, आन अनीत न पेखिये।
इस विसनरायके खेलको, कौतुक हू नहिं देखिये॥४॥

मांसनिषेध। छप्पय।

जंगम[4] जियको नाश, होय तब मांस कहावै।
सपरस आकृति नाम, गंध उर घिन उपजावै॥
नरक जोग निर्दई, खाहिं नर नीच अधर्मी।
नाम लेत तज देत, असन[5] उत्तम कुल कर्मी॥
यह निपट निंद्य अपवित्र अति, कृमिकुलराशिनिवास नित।
आमिष अभच्छ याको सदा, वरज्यो दोष दयालचित॥५॥

---

१ नेत्रोंसे। २ जैसे सूर्यको केतुग्रहका विमान रोक देता है। ३ अवगुणोंके समूहका घर। ४ एकेंद्रिय जीवको छोड़कर बाकीके समस्त जीवोंको जंगम जीव कहते हैं। ५ भोजन।

दुर्मिल सवैया । मदिरा निषेध ।

कृमिरास कुवास सरॉय दरैं, शुचिता सब छीवत जात सही ।
जिह पान किये सुधि जात हिये, जननी जन जानत नार यही
मदिरासम और निषिद्ध कहा, यह जान भले कुलमें न गही ।
धिक है उनको वह जीभ जलो, जिन मूढनके मत लीन कही ॥

वेश्या निषेध ।

धनकारण पापनि प्रीति करै, नहिं तोरत नेह जथा तिनको ।
लैव चाखत नीचनके मुहकी, शुचिता सब जाय छिये जिनको ॥
मदमांस बजारनि खाय सदा, अँधले विसनी न करै घिनको ।
गनिका संग जे शठ लीन भये, धिक है धिक है धिक है तिनको ॥

शिकार निषेध (कवित मनहर)

काननमें बसै ऐसो आनन गरीब जीव,
प्राननसे प्यारो प्रान पूंजी जिस यहै है ।
कायर सुभाव धरै काहूसौं न द्रोह करै,
सबहीसौं डरै दांत लिये तृन रहै है ॥
काहूसौं न रोस पुनि काहूपै न पोष चहै,
काहूके परोष परदोष नहिं कहै है ।
नेक स्वाद सारिवेको ऐसे मृग मारिवेको,
हा हा रे कठोर तेरो कैसे कर वहै है ॥ ८ ॥

---

३ सडाकर । ४ यदि धन नहीं होता है प्रीतिको तिनकेकी तरह तोड डालती है । ५ लार--लाला । ६ वनमें जंगलमें । ७ परोक्ष पीठ पीछे । ८ कैसे हाथ चलाता वा उठाता है ।

चोरी निषेध छप्पय ।

चिंता तजै न चोर, चौंकायत[1] सारै ।
पीटै धनी विलोक, लोक निर्दई मिल मारै ॥
प्रजापाल करि कोप, तोपसौं रोपि उडावै ।
मरै महादुख पेखि, अंत नीची गति पावै ॥
अति विपतिमूल चोरी विसन, प्रगट त्रास आवै नजर ।
परवित[2] अदत्त[3] अंगार गिन, नीतिनिपुन परसै न कर ॥

परस्त्री निषेध ।

कुगति वहन गुनगहन, दहन दावानल ही है ।
सुजसचंद्र[4] घनघटा, देहकृषकरन खई[5] है ॥
धनसर–सोखनधूप, धर्मदिन[6] सांझ समानी ।
विपति भुजंगनिवास, वांवई[7] वेद बखानी ॥
इहविधि अनेक औगुन भरी, प्रानहरन फांसी प्रबल ।
मत करहु मित्र यह जान जिय, परवनितासौं प्रीति पल ॥

परस्त्री त्याग प्रसंग ।

दुर्मिल सवैया ।

दिढि दीपकै लोय वनी वनिता, जड़जीव पतंग जहां परते ।

---

१ चौकन्ने । २ परका धन । ३ विना दिया हुवा । ४ सुजस रूपी चंद्रमाको ढकनेके लिए बादलोंकी घटा । ५ क्षय रोग । ६ धर्मरूपी दिन को अंत करनेवाली संध्या । ७ सांपके रहनेकी वाल्मीकी–बांवी । ८ दिव्य-प्रकाशमान । ९ दीपककी लोय ।

दुख पावत मान गवांवत हैं, बरजे न रहैं हठसौं जरते ॥
इह भांति विचच्छन अच्छनके[10] बल, होय अनीति नहीं करते।
परती[11] लखि जे धरती निरखैं, धनि हैं धनि हैं धनि हैं नर ते॥
दिढ शील शिरोमनि कारजमैं, जगमें जस आरज[12] तेइ लहैं।
तिनके जुग लोचन वारिज[13] हैं, इह भांति अचारज आप कहैं॥
पर कामिनिको मुख चंद चिते, मुद जांहि सदा यह टेव गहैं।
धनि जीवन[14] है तिन जीवनि[15] को, धनि माय[16] उन्है उँर[17] माहि वहैं

कुशील निंदा।

मत्त गयंद सवैया

जे परनारि निहारि निलज्ज, हँसै विगसैं[1] बुधहीन बडे रे।
झूठनकी जिमि पातर[2] पेखि, खुसी उर कूकर होत घनेरे॥
है जिनकी यह टेव[3] वहै[4], तिनको इसभौ अपकीरति है रे।
है परलोक[5] विषै दृढ दंड, करै शत खंड सुखाचलकेरे[6]॥

एक एक विसनको सेवनकर फल पानेवाले।

प्रथम पांडवाँ भूप, खेलि जूआ सब खोयो।

---

१० इन्द्रियोंके वश। ११ परस्त्रीको। १२ आर्य-श्रेष्ठ पुरुष। १३ कमल। १४ जीवितव्य-जीना। १५ जीवोंका। १६ माता। १७ पेटमें नोमहीना धारण करती है।

१ विकसित होते हैं खिल उठें। २ पत्तल। ३ आदतवान्। ४ वह आदत इस भवमें उनकी वदनामी करती है। ५ और परलोकमें। ६ बड़ा भारी दंड दिलाकर सुखरूपी पर्वतके सैकडों टुकडे करदेती है।

मांस खाय बकराय, पाय विपदा बहुरोयो ॥
विन जाने मद्‌पान योग, जादौंजन दुज्झे।
चारुदत्त दुख सह्यो, विसवा विसन अरुज्झे ॥
नृप ब्रह्मदत्त आंखेटसौं, द्विज शिवभूति अदत्तरति ॥
पर रमनि राचि रावन गयो, सातौं सेवत कौन गति ॥ १४ ॥

दोहा।

पाप नाम नरपति करै, नरक नगरमें राज।
तिन पठये पायक[11] विसन, निजपुर वसती[12] काज ॥ १५ ॥
जिनकैं जिनके[13] बचनकी, बसी हिये परतीत।
विसन प्रीति ते नर तजो, नरकवास भयभीत ॥ १३ ॥

—:o:—

३६. जिनेंद्रभक्तकी कथा।

सौराष्ट्र देशमें पटना नगर है वहां यशध्वज राजा राज करते थे। उनकी रानीका नाम सुसीमा था और सात व्यसनका सेवी चोरोंका मुखिया सुवीर नामका पुत्र था. पूर्वदेश में तामलिप्ता नगरी थी जहां एक श्रद्धालु सेठ रहता था जिसके सतखने मकानके ऊपरखनमें एक अपूर्व रत्नमयी पार्श्वनाथजी की प्रतिमा विराजमान थी उसके ऊपर तीन छत्र थे

७ वक नामका राजा ८ जले ९ वेश्या व्यसन १० सिकारसे ११ सिपाही १२ नरक-नगरकों वसानेके लिये १३ जिंनद्र भगवानके।

उनमें एक बहुत बढिया वैडूर्यमणि रत्न था और उसकी तारीफ सुवीरने सुन रक्खी थी उसने लोभके वशीभूत होकर उस मणिको चुराना चाहा पर स्वयं तो न गया कारण कि वह जैनी था और इसका पिता वडा जिनेन्द्रभक्त था। इस वास्ते स्वयं जाना अनुचित समझ कर अपने मित्र चोरोंको बुलाया और कहा—क्या कोई ऐसा शक्तिशाली है जो वहांसे वैडूर्यमणि चुरा सके यह सुनकर सूर्य नामका चोर बोला यह तो क्या बल्कि मैं स्वर्गसे इन्द्रका मुकुट भी चुरा लासकता हूं। वस फिर क्या था वह वहांसे रवाना हो गया और क्षुल्लकके वेषको धारण करके कायक्लेश करता हुआ तामलिप्ता नगरीमें पहुंचा, उसको आया हुआ सुनकर जिनेन्द्रभक्त श्रेष्ठीने वंदना की और उनके साथ कुछ भाषण करके उनकी प्रशंसा करता हुआ पार्श्वनाथके मंदिरमें ले गया, भगवानके दर्शन कराये। सेठजीकी श्रद्धा क्षुल्लकजी पर खूब होगई थी इसलिये एकदिन सेठजीका विचार हुआ कि क्षुल्लकजीको पार्श्वनाथके मंदिरका रक्षक व पुजारी बनाकर तीर्थयात्राको चले जावें। सेठजीने सर्व वृत्तांत क्षुल्लकजीसे कहा और वहां रहनेकी प्रार्थना की। क्षुल्लकजी तो ऐसा चाहते ही थे इसलिये उन्होंने सब स्वीकार कर लिया जब सेठजी घरसे निकल कर बाहिर उद्यानमें जा ठहरे तो यह पता क्षुल्लकजी को लग गया वह आधीरातके समय मणिको उठाकर चल दिया किंतु मणिकी कांति इतनी

चमकदार थी कि वह रात्रिमें न छिप सकी, मार्गमें बड़ा प्रकाश होने लगा, भाग्यसे कोतवालकी निगाह इस पर पड़ गई। उसने यह समझकर कि चोर किसीका रत्न चुराकर भागा जारहा है शीघ्र ही उसका पीछा किया। यद्यपि चोर बहुत भागा पर कोतवालने पीछा न छोडा अंतमें चोर असमर्थ होकर उसी उद्यानमें पहुंचा जहां सेठजी ठहरे हुए थे। वहां पहुंचकर वडे जोरसे चिल्लाया कि मेरी रक्षा करो। सेठजीने कोतवालकी डाँटको सुनकर और उसे चोर समझकर मनमें विचार किया कि यदि मैं इसे चोर बतलाता हूं तो मेरे धर्मकी निंदा होगी या मेरे सम्यग्दर्शनमें दोष लगेगा। अतएव उसने कोतवालसे कह दिया कि यह चोर नहीं है यह वडा तपस्वी और सच्चा है मैंने ही इसे मणि लानेको कहा था आपने बुरा किया कि इन्हें चोर समझ कर पीछा किया कोतवाल श्रेष्ठीके ऐसे वचन सुनकर चला गया। इधर सेठने एकांतमें खूब ही उस क्षुल्लकको डाटा और उसी समय निकाल दिया। आप स्वयं वैराग्यको प्राप्त होकर दीक्षा धारण करली और तपश्चरणके प्रभावसे स्वर्ग में देव हुये।

इसी तरह हरएकको चाहिये कि अज्ञान व असमर्थ पुरुषद्वारा धर्मकी निंदा होती हो तो उसे प्रगट न करें। ढकने का प्रयत्न करें और उसे एकातमें समझावे या दंड देनेके योग्य हो तो दंड देवे जैसा कि जिनेंद्रभक्त सेठने किया।

३७ सुंदर दृश्य।

चित्तका सदैव प्रसन्न रहना शरीरकी स्वस्थता (तंदुरुस्ती) का प्रधान कारण है। क्योंकि संसारमें अनेक प्रकारकी चिंताओं और अन्यान्य कारणोंसे मनुष्यके चित्तमें विकलता, ग्लानि वा आलस्य हो आता उस समय चित्तको प्रसन्न करनेके निमित्त समस्त इंद्रियें अपने २ विषयको प्राप्त करनेके लिये इधर उधर दौडती हैं। यदि उस समय आवश्यकीय विषयकी प्राप्ति न हो तो शरीरको बडी भारी हानि पहुंचती है। पांचों इंद्रियोंमेंसे प्रथम ही हमारी नेत्र इंद्रिय सुदृश्य पदार्थको देखनेके लिये व्याकुल होती है। इस कारण उस समय नेत्रोंके संमुख अवश्य ही सुंदर दृश्य पदार्थोंका होना आवश्यक है क्योंकि उस समय नेत्रोंकी व्याकुलता दूर न करनेसे अथवा नेत्रोंके संमुख असुंदर पदार्थोंके होनेसे चित्तकी ग्लानि और भी बढ जायगी जिससे मानसिक पीडा बढनेसे शारीरिक क्रियामें भी व्यालघंन हो जायगा अर्थात् शरीर और चित्तका (मनका) घनिष्ट संबंध होनेसे शरीरमें रोगोत्पत्ति हो जायगी। चित्तकी प्रसन्नतासे शरीरमें रक्तकी अधिकता होना ही स्वास्थ्य (निरोगता) है। इस कारण नेत्रेंद्रियको सुंदर दृश्य पदार्थोंके अवलोकनकी अत्यंत आवश्यकता

है। सो नेत्रोंको प्रसन्न करनेवाले पदार्थोंका संग्रह अवश्य करना चाहिये अर्थात् घर दुकान बैठक भले प्रकार परिष्कार और सजाये रखना चाहिये। जिससे चारों तरफ नयनतृप्ति कर पदार्थ सदैव दृष्टिगोचर रहैं। तथा बाहरमें जावै तौ बाग बगीचेमें या सुंदर बाजारमें ठहरनेको जाना चाहिये। सुंदर २ छोटे २ बच्चोंका खेल देखना भी नयन मनको तृप्तिकर होता है परन्तु ऐसा न हो कि दिन रात सुंदर पदार्थोंके देखनेमें ही लवलीन हो जावो। यदि ऐसा करोगे तौ तुम्हारा संयम धर्म नष्ट हो जायगा-संयमका नष्ट करना आत्मा का घात करना है इस कारण जब तुमारा चित्त कारण विशेषसे घबडाकर सुंदर पदार्थोंका अवलोकन करना चाहे उसी समय सुंदर पदार्थोंके लिये तत्पर होना चाहिये जब घंटे आध घंटे बाद चित्तमें शांति हो जाय तब अपने कर्त्तव्य में लग जाना चाहिये।

जिस प्रकार सुंदर पदार्थोंका अवलोकन स्वास्थ्यकर है उसी प्रकार सुगंधित पदार्थोंका सूंघना, तथा जिह्वा मन तृप्ति करनेवाले पदार्थोंका भक्षण करना तथा सुंदर गीत नृत्य वादित्र वा सुमिष्ट शब्दोंका सुनना भी स्वास्थ्यकर है परंतु अनावश्यकीय वा अधिकताके साथ इन विषयोंमें लवलीन हो जाना हानिकारक है। इस कारण जिस समय इन विषयोंको उपयोगमें लानेकी अत्यंत आवश्यकता हो उसी समय ग्रहण करना चाहिये। अर्थात् समय पर सुगं-

चित पदार्थ, पुष्प, इतर चंदनादिका धारण करना व घरमें दोनों वक्त धूप दहन करते रहना चाहिये। इसी प्रकार सुमिष्ट शब्दोंको सुनना चाहिये और जिह्वा तृप्तिके लिये उपादेय स्वादिष्ट तृप्तिकर पथ्य भोजन ग्रहण करना चाहिये जिससे सुख स्वास्थ्यकी वृद्धि हो।

३८. वारिषेण राजपुत्रकी कथा।

मगध देशमें राजगृह नामका नगर है वहांके राजा श्रेणिक थे जिनकी पट्टरानीका नाम चेलना था उनके एक धार्मिक वारिषेण नामका पुत्र था जो हमेशा अष्टमी चतुर्दशीके व्रतोंको वडे उत्साहसे पालन किया करता था एक चतुर्दशीके दिन उपवास धारण करके रात्रिको स्मशानमें जाकर कायोत्सर्ग मांड दिया और सामायिक करने लगे इतनेमें उसी दिन श्रीकीर्ति सेठ एक दिव्यहारको पहिनकर वगीचामें दिल वहलाने गए थे भाग्यसे वहीं पर एक मगधसुंदरी वेश्या भी जा पहुंची जिसका जी उस सुंदर हारको देखकर ललचा गया वस! वह वहांसे चल दी और यह विचार करती हुई कि विना इस हारके मेरा जीना निरर्थक है जाकर शय्या (खाट) पर लेट गई। रात्रिको उसका यार विद्युत् चोर आया और उसे इस प्रकार पडी देखकर बोला—आज

आप क्यों ऐसी मलिन वदन मालूम पडती हो? उसने कहा कि यदि श्रीकीर्ति श्रेष्ठीके हारको चुराकर मुझे उससे अलंकृत करोगे तो मैं जीऊंगी और तुम मेरे स्वामी होगे, अन्यथा नहीं। यह सुनकर वह वहांसे चल दिया और सीधा सेठके महलमें पहुंचकर हार चुराकर लौट पडा परंतु घरके रक्षक कोतवालोंने उस हारकी कांतिको देखकर समझ लिया कि यह कोई चोर चोरी करके जारहा है। कोतवालोंने उसका पीछा किया। वह भागनेमें असमर्थ होकर श्मशान भूमिकी तरफ गया और वहां वारिषेण जो कि कायोत्सर्ग लगाकर खड़े हुए थे उनके आगे वह हार डालकर वहीं कहीं लुक गया, जब कोतवाल वारिषेणके पासमें आए तो उसीको हारका चुरानेवाला समझकर श्रेणिक राजाको खबर करदी कि आपका लडका ही हारका चुरानेवाला है। श्रेणिकने यह सुनकर विना विचारे ही आज्ञा देदी कि उस पापीका शिर काट डालो, हुक्म सुनाते देरी न हुई थी कि चांडालने तलवार लेकर जैसे ही उनके मस्तक पर चलाई कि उनके गले में एक सुन्दर पुष्पमाला बन गई। जब श्रेणिकने यह अतिशय सुना तो शीघ्र दोड़ आया और अपने कसूरको वारिषेणसे क्षमा कराया और बार २ घर चलनेको कहा परन्तु उनने इस प्रकार संसारकी चंचलता देखकर मुनि होनेका ही उत्तर दिया और सुरदेव मुनिके पास जाकर दीक्षा ले ली। अब वह इधर उधर धर्मोदेश होते हुए पलासकूट

ग्राममें पहुंचे जहां श्रेणिकके मंत्रीका पुत्र पुष्पडाल रहता था, एक दिन आहारके लिये ग्राममें आए और उसी पुष्पडालके दरवाजेसे निकले। पुष्पडालने शीघ्र पडगा लिया और भक्तिसे भोजन कराया और यह स्मरण करके कि ये हमारे वडे मित्र थे अपनी स्त्रीसे आज्ञा लेकर कुछ दूरतक पहुंचाने गया। जब कुछ दूर निकल गए और मुनिजीने लौटनेको न कहा तो आप स्वयमेव ही महाराज यह वही कुआ है जहां हम आप खेला करते थे इत्यादि कुआं वावडी दिखा कर लौटनेका प्रयत्न करने लगे परंतु मुनिजीको अव इन वातोंसे क्या प्रयोजन था? अतः कुछ उत्तर न देकर सीधे चलते ही गये, अव तो पुष्पडाल समझ गया कि महाराज कुछ न कहेंगे इसलिये आगे जाकर हाथ जोडकर खडा हो गया और मुनिजीको वार २ नमस्कार करने लग गया। मुनिजी इसके अभिप्रायको तो जान ही चुके थे परंतु आपने वडी शांतिसे धर्मोपदेश दिया जिससे पुष्पडालका चित्त उस समय अपनी कानी स्त्रीसे हटकर वैराग्यकी तरफ झुक गया और उनके साथ ही चल दिया इस तरह दोनों जनोंको तीर्थयात्रा करते हुए वारह वर्ष वीत गए और क्रमसे वर्द्धमानके समवसरणमें पहुंचे परंतु इतने दिन पुष्पडालको तपश्चरणमें निकल जाने पर भी अपनी कानी स्त्रीकी याद न भूली और इसी संवंधमें वहीं जाकर एक गंधर्व द्वारा श्लोक भी सुना जिसका अभिप्राय महावीर स्वामी और पृथिवीके

सम्बन्धमें था। वह यह था कि हे स्वामिन् आपने इस पृथ्वी रूपी स्त्रीको तीस वर्षतक भोगके छोड दिया है इसलिए वह आपके वियोगसे दुखी होकर नदीरूप आंसुओंसे आपकी याद कर रोरही है। पुष्पडाल, पूर्वोक्त श्लोकका अर्थ अपनी स्त्री (काणी) और अपने सम्बन्धमें समझकर अत्यन्त विह्वल हो गया और यह विचार करता हुआ कि मेरी स्त्री मेरे वियोगसे अत्यंत दुखी होगी इसलिए कुछदिन घरमें रहकर उसे फिर संसार सुखका मजा चखाऊंगा और फिर निश्चित होकर दीक्षा लूंगा उठकर घरको चल पडा परंतु यह सब अपने दिव्य ज्ञानसे वारिषेण मुनि समझ हो गये थे इस-लिये उनने न जाने दिया और उसी धर्ममें स्थित करने के लिए अपने नगर (राजगृह) को चल दिये। चेलिनाने जब वारिषेणको देखा तो विचारने लगी कि क्या वारिषेण अपने चरित्रसे च्युत होगया है जिससे घरकी तरफ आरहा है परंतु परीक्षा करनेके लिये उसने दो आसन बिछा दिए वारिषेण तो वीतराग आसन (काठकी चौकी) पर बैठ गये किंतु सोनेके यानी सराग आसन पर पुष्पडाल बैठगया उसी समय वारिषेणने अपनी सब स्त्रियां और अन्तःपुर आदि दिखा पुष्पडालसे कहा कि तुम इन सबको ग्रहण करो और मनमाना भोग भोगो कारण कि उस कानी स्त्री की बजाय ये ३२ स्त्रियां हैं और यह तमाम राज्य है। यह सुनकर पुष्पडाल बहुत लज्जित हुआ और विचारने लगा कि

वस्तुतः संसारके सुख, सुख नहीं है अन्यथा मेरी उस स्त्री से ये स्त्रियां जो कि सब तरह रूप विद्या कला आदिमें चतुर हैं, वारिषेण क्यों छोडते ? इससे उसे परम वैराग्य प्राप्त हो गया और निश्चयसे तप करनेमें लग गया, वहांसे मरकर स्वर्गमें देव हुआ, उधर वारिषेण मुनिने आठ कर्मोंको नाश करके सिद्धपदको प्राप्त किया।

पूर्वोक्त कथाका सारांश यही है कि अपने सच्चे धर्मसे डिगते हुयेको जैसे बने उसीमें फिर लगा देना इसीका नाम स्थिति करण अंग है जैसा कि वारिषेण मुनिने पुष्पडालके साथकिया। इस कथाका पूर्वभाग अचौर्याणु व्रत में भी घट सकता है।

——:०:——

३९. श्रावकाचार चौथा भाग।

सम्यग्ज्ञानका लक्षण।

वस्तुरूपको जो बतलावे, नीके न्यूनाधिकता-हीन।
ठीक ठीक जैसैका तैसा, अविपरीत संदेह विहीन॥
गणधरादि आगमके ज्ञाता, कहते इसको सम्यग्ज्ञान।
इसको प्राप्त करानेवाले, कहे चार अनुयोग महान॥ ३७॥

न्यूनाधिकता, विपरीतता और संदेहरहित जैसाका तैसा वस्तुके स्वरूपको जानना उसे गणधरादि आगमके

ज्ञाता पुरुषोंने सम्यग्ज्ञान कहा है। इस सम्यग्ज्ञानको प्राप्त करानेवाले प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग ये चार अनुयोग हैं॥ ६७॥

प्रथमानुयोगका लक्षण।

धर्म अर्थ औ काम मोक्षका, जिसमें किया जाय वर्णन।
पुण्य कथा हो चरित गीत हो, हो पुराणका पूर्ण कथन॥
रत्नत्रय औ धर्म ध्यानका, जो अनुपम हो महा निधान।
कहलाता प्रथमानुयोग है, यों कहता है सम्यग्ज्ञान॥ ३८॥

जिसमें त्रेसठि शलाका पुरुषोंमेंसे किसी एककी पुण्यमय चरित कथा हो, और धर्म अर्थ काम मोक्षका वर्णन हो, तथा रत्नत्रय धर्म ध्यानका अनुपम खजाना हो उसे प्रथमानुयोग कहते हैं॥ ३८॥

करणानुयोगका लक्षण।

लोकालोक विभाग बतावे, युग परिवर्त्तन बतलाता।
वैसे ही चारों गतियोंको, दर्पण सम है दिखलाता॥
है उत्तम करणानुयोग यह, कहता है यों सम्यग्ज्ञान।
इसे जाननेसे मानव कुल, हो जाता है बहुत सुजान॥३९॥

जो अलोकालोकका विभाग, युगोंका परिवर्त्तन और चारों गतियोंका वर्णन दर्पणकी समान दिखलाता है उसको करणानुयोग कहते हैं॥ ३९॥

चरणानुयोगका लक्षण ।

गृहस्थियोंका अनगारोंका, जिससे चारित हो उत्पन्न ।
बढे और रक्षा भी पावे, है चरणानुयोग प्रतिपन्न ॥
मित्रो इसका किये आचरण, चरित गठन हो जाता है।
करते हुये समुन्नति अपनी, जीव महा सुख पाता है ॥४०॥

जिसमें गृहस्थ और मुनियोंके चारित्रकी उत्पत्ति वृद्धि और रक्षाके उपायका वर्णन हो उसे चरणानुयोग कहते हैं ॥ ४० ॥

द्रव्यानुयोगका लक्षण ।

जीव तत्त्वका स्वरूप ऐसा, ऐसा है अजीवका तत्त्व ।
पाप पुण्यका यह स्वरूप है, बंध मोक्ष है ऐसा तत्त्व ॥
इन सबको द्रव्यानुयोगका, दीप भली विधि बतलाता ।
जो श्रुतविद्याके प्रकाशको, जहां तहां पर फैलाता ॥ ४१ ॥

जिसमें जीव अजीव पुण्य पाप बंध मोक्ष आदि तत्त्वोंका वर्णन हो उसे द्रव्यानुयोग कहते हैं ॥ ४१ ॥

सम्यक्चारित्रका स्वरूप ।

मोह तिमिरके हट जानेपर, सम्यग्दर्शन पाता है ।
उसको पाकर साधु समिकिती, श्रेष्ठ ज्ञान उपजाता है ॥
फिर धारण करता है शुचितर, सुखकारी सम्यक्चारित्र ।
रहे राग ज्यों नही पास कुछ, और द्वेष नश जावै मित्र ४२
राग द्वेषके नश जानेसे, नही पाप ये रहते पांच ।

हिंसा मिथ्या चोरी मैथुन, और परिग्रह लीजे जांच ॥
इन सबसे विरक्त हो जाना, सम्यग्ज्ञानीका चारित्र।
सकल विकलके भेद भावसे, धरें इसे मुनि गृही पवित्र ४३

मोहतिमिरके (दर्शन मोहनीके) हट जानेपर सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञानकी प्राप्तिके पश्चात् रागद्वेषकी निवृत्तिके लिये सम्यग्दृष्टी सम्यक्चारित्रको धारण करता है क्योंकि रागद्वेषके नष्ट हो जानेपर हिंसा असत्य चौरी कुशील और परिग्रह ये पांच पाप नहिं रहते और इन पांच पापोंसे विरक्त होनेको ही सम्यक्चारित्र कहते हैं। वह चारित्र सकल विकलके भेदसे दो प्रकारका है। सकल चारित्र मुनिका होता है, विकल चारित्र गृहस्थका होता है॥ ४३॥

विकल चारित्रके भेद।

वारह भेद रूप चारित है, गृही जनोंका तीन प्रकार।
पांच अणुव्रत तीन गुणव्रत, और भले शिक्षाव्रत चार॥
क्रमसे सभी कहो, पर पहिले, पांच अणुव्रत बतलादो।
उनका पालन करना सारे, गृही जनोंको सिखलादो ४४

श्रावकका चारित्र वारहव्रत रूप है पांच अणुव्रत तीन गुणव्रत शिक्षाव्रत ये तीन भेद हैं। सो क्रमसे कहे जाते हैं॥ ४४॥

४०. विष्णुकुमार मुनिकी कथा।

(राखी पूर्णिमा)

अवंती देश उज्जयनी नगरीमें राजा श्रीवर्मा था। उसकी रानी श्रीमती थी। उसके वलि, बृहस्पति, प्रह्लाद, और नमुचि ये ४ मंत्री थे। ये सब मिथ्यधर्मी थे। उस नगरीके बाहर उद्यानमें एक समय समस्त शास्त्रोंके जाननेवाले, दिव्यज्ञानी अकम्पनाचार्य सातसौ मुनिसहित पधारे। संघाधिपति आचार्य महाराजने संघके समस्त मुनिगणोंसे कह दिया कि, यहां राजा वगेरह कोई लोग आवैं, तो किसीसे भी वोलना नहीं, सब मौन धारण करके रहना। नहीं तो संघको उपद्रव होगा।

उस दिन राजाने अपने महलपरसे नगरके स्त्रीपुरुषोंको पुष्पाक्षतादि लिये जाते हुऐ देखकर मंत्रियोंसे पूछा कि,—ये लोग बिना समय किस यात्राके लिये जाते हैं? मंत्रियोंने कहा कि नगरके वाहर नग्न दिगम्बर मुनि आये हुए हैं, उनकी पूजाके लिये जाते हैं। राजाने कहा कि— चलो न, अपन भी चलकर देखें कि वे कैसे मुनि हैं। तब राजा भी उन मंत्रियों सहित वनमें गया। वहां सबको भक्ति पूजा करते हुए देखकर राजाने भी नमस्कार किया परंतु गुरुकी आज्ञानुसार किसी भी मुनिने राजाको आशीर्वाद नहिं दिया।

यह क्रिया देख राजाको कुछ क्षोभ और संताप हुआ तब मंत्रियोंने अवसर पाकर कहा कि–महाराज ! ये सब मूर्ख हैं, बलीवर्द्द हैं, इनको बोलना नहिं आता है, इसी कारण छलसे सबने मौन धारण कर लिया है। इत्यादि निंदा वा हास्यादि करके मंत्रीगण राजाके साथ नगरकी ओर लौटे, किंतु मार्गमें उसी संघके श्रुतसागर नामके मुनि नगरीसे चर्या करके वनको आते थे। उनको सम्मुख देखकर उन चारों मंत्रियोंने कहा कि, देखिये महाराज ! यह भी एक तरुण बलीवर्द्द पेट भरके आरहा है। श्रुतसागर मुनिने इस पर मंत्रियोंको अच्छा मुहतोड उत्तर दिया, और पीछे विवाद करके राजाके सम्मुख ही उन्हें अनेकान्तवादसे हरा दिया जिससे कि वे बडे लज्जित हुए। पीछे संघमें पहुंचकर श्रुतसागरने आचार्य महाराजको यह सब वृत्तांत कह सुनाया आचार्य महाराजने कहा कि तुमने बुरा किया ! समस्त संघपर तुमने बडी भारी आपत्ति ला दी। अस्तु, अब प्रायश्चित्त यह लो कि, तुम उसी वादकी जगह पर जाकर कायोत्सर्गपूर्वक ठहरो और जो जो उपसर्ग आवैं उन्हें सहन करो। आज्ञा पाकर श्रुतसागरने ऐसा ही किया और रात्रिको वे चारों मंत्री समस्त संघको मारनेका संकल्प करके आये। परंतु मार्गमें अपने असली शत्रु श्रुतसागर मुनिको देखकर वे चारोंके चारों खड्ग लेकर पहले उसीपर टूट पडे। परंतु उस जगहके वनदेवतासे यह अन्याय देखा नहिं गया, इसलिये

उसने मुनिको मारनेके लिये हाथमें तलवार उठाये हुए उन चारों मंत्रियोंको जहांके तहां कील दिये अर्थात् वे चारों पत्थर-जैसे हो गये और मुनिको नहिं मार सके। प्रातःकाल ही यह वृत्तांत राजाने सुना, तो उसने उन चारोंका काला मुंह करके और गधेपर सवार कराके देशसे निकाल दिया।

वे चारों मंत्री कुरुजांगल देशमें हस्तिनापुर नगरके राजा पद्मसे जाकर मिले और उसके मंत्री हो गए। उस समय उस नगर पर कुंभपुरका राजा सिंहबल चढ आया था सो उन चारोंमेंसे बलि नामक मंत्री अपनी चतुराईसे उस सिंहबल राजाको हराकर पकड लाया, तब पद्मराजाने खुश होकर बलिको मनवांछित वर मांगनेका वचन दिया। बलि मंत्रीने कहा कि, मेरा वर इस समय जमा रहै, जब मुझे आवश्यकता होगी तब याचना करूंगा। राजाने 'तथास्तु' कहकर स्वीकार किया।

इसके पश्चात् कुछ दिनोंमें वे ही अकम्पनाचार्य अपने सातसौ मुनियोंके संघसहित हस्तिनापुरके वनमें आये, तब बलिने यह बात जानकर उन मुनियोंको मारनेकी इच्छासे राजासे अपना वह पुराना वर मांगा कि, मुझे सात दिनका राज दीजिये। राजा पद्म सात दिनके लिये बलिको राजा बनाकर आप अपने राजमहलोंमें रहने लगा।

बलिने आतापन नामक पर्वत पर कायोत्सर्ग ध्यान करते हुए मुनियोंको मारनेके लिये वहीं पर नरमेध यज्ञका

प्रारम्भ किया और उनको उस यज्ञमें जला देनेका प्रबंध किया। उनके निकट बकरे वगैरहोंका हवन करके उसकी दुर्गंधसे बडा कष्ट पहुंचाया यहां तक कि अनेक मुनियोंके उस दुर्गंधित धुएंसे गले फट गए और अनेक बेहोश हो गये।

इसी समयमें मिथिलापुरीके निकटके वनमें श्रुतसागर चंद्राचार्य महाराजने अर्द्धरात्रिके समय श्रवण नक्षत्रको कंपायमान देखकर अवधिज्ञानसे विचारकर खेदके साथ कहा—कि—'महामुनियोंको महान् उपसर्ग हो रहा है' उस समय पास बैठे पुष्पदन्त नामके विद्याधर क्षुल्लकने पूछा कि, भगवन्! कहांपर किन २ मुनिमहाराजोंको उपसर्ग हो रहा है? तब आचार्यमहाराजने हस्तिनापुरके वनमें अकंपनाचार्यादिके उपसर्गका समस्त वृत्तांत कहा। क्षुल्लक महाराजने पूछा कि—इस उपसर्गके दूर होनेका भी कोई उपाय है? तब मुनि महाराजने अवधिज्ञानसे कहा कि, धरणीभूषण पर्वत पर विष्णुकुमार नामके मुनि हैं। उनको विक्रिया ऋद्धि प्राप्त हुई है। उनसे जाकर तुम प्रार्थना करो, तो वे इस उपसर्गको दूर कर सकते हैं। यह सुनते ही उस विद्याधर क्षुल्लकने तत्काल ही विष्णुकुमार मुनिके निकट जाकर मुनिसंघके उपसर्गकी बात कही और यह भी कहा कि,—आपको विक्रिया ऋद्धि है, आप समर्थ हैं। तब विष्णुकुमार मुनि महाराजने हाथ पसार कर देखा, तो कोसों तक हाथ लंबा होता चला गया। तब उसी वक्त पद्म राजाके पास

गये। उसको बहुत कुछ कहा। उसने कहा कि मैंने ७ दिन का राज्य बलिको दे दिया है वही उपसर्ग करता है। तब विष्णुकुमार बलि राजाके पास गये, जहां कि वह सबको इच्छित दान दे रहा था. विष्णुकुमारने वामनरूप धारण करके कुटी बनानेको अपने पांवसे तीन पैंड जमीन मांगी। बलिने तत्काल ही दी। विष्णुकुमारने विक्रिया ऋद्धिसे बहुत बडा शरीर बनाकर एक पांव दक्षिण तरफके मानुषोत्तर पर्वत पर रक्खा और एक पांव सुमेरु पर्वतपर रखकर दूसरा पांव उत्तरके मानुषोत्तर पर्वतपर रक्खा, और तीसरे पांवसे देवोंके विमानोंको क्षोभित करके बलिकी पृष्टपर रखके उस को काबूमें कर लिया अर्थात् बलिको बांध लिया। तब देवताओंने आकर मुनियोंका उपसर्ग निवारण किया, पूजा वंदनादि की। पद्मराजा और चारों मंत्री, विष्णुकुमार अकंपनाचार्यादि मुनि महाराजोंके चरणोंमें पडे, क्षमा प्रार्थना करके अपराध क्षमा कराया। सबने जैनधर्म धारणकर श्रावक के १२ व्रत ग्रहण किये। मुनियोंके कंठ धुवेंसे फट गये थे, बडी तकलीफ थी, सो नगरके लोगोंने उस दिन दूधकी खीरके भोजन तैयार किये और सब मुनियोंको आहार

---

१ अढाई दीपके चारों तरफ आधे पुष्कर द्वीपमें कोटकी तरह एक पर्वत है वहांसे आगे विद्याधर मनुष्य भी नहीं जा सकता, इस कारण उसको मानुषोत्तर पर्वत कहते हैं।

दिया। उस दिन श्रावणशुक्ला पूर्णमासीका दिन था, सात सौ मुनियोंकी रक्षा हुई, इसकारण देशभरकी प्रजाने परस्पर रक्षाबंधन किया और उस दिनको पवित्र दिन मानकर प्रतिवर्ष रक्षाबंधन क्षीरभोजनादिसे इस पर्वको मानना शुरू किया। उसी दिनसे यह राखीपूर्णिमाका तिहवार चला है। अन्यमतियोंने विष्णुकुमारकी जगहँ विष्णु भगवान और वलि मंत्रीकी जगहँ सुग्रीवके भाई वलि राजाको मानकर मनगढंत कहानी बना ली है, सो मिथ्या है।

४१. शारीरिक परिश्रम।

यद्यपि परिश्रम विषयक वर्णन दूसरे भागके ६८वें पृष्ठ, उनचालीसवें पाठमें लिखा गया है। उसमें शारीरिक परिश्रमकी आवश्यक्ता और लाभादि दिखाये गए हैं तथापि आवश्यक समझ थोड़ासा विषय इस भागमें भी लिख देना उचित है।

शारीरिक परिश्राम करनेसे किस प्रकारका हितसाधन हो सकता है सो विचारना चाहिये कि–हमलोग शरीरके कितनेही मांसमय हिस्सोंकी सहायतासे चलते फिरते हैं, उन सब मांसमय हिस्सोंका नाम मांसपेशी है, सो नित्य नियमानुसार शारीरिक व्यवहार करनेसे वे सब मांसपेशियें

मोटी और बलिष्ठ हो जाती हैं किसी लुहारके दहने हाथको देखोगे तो यह बात सिद्ध हो जायगी । इसी प्रकार मांस पेशियोंका नियमित व्यवहार न होनेसे वे सब मांसपेशियां पतली और कमजोर हो जाती हैं, सो किसी ऊर्ध्वबाहु तपस्वी सन्यासीका जो हाथ हमेशह ऊपर उठा हुवा होता है उस को देखनेसे भलेप्रकार निश्चय हो जायगा कि यह बात ठीक है।

हमलोग स्थिर होते हैं तो हमारे मुख और नासिकासे प्रायः एक मिनिटमें सोलह वार श्वासोच्छ्वास होता है परंतु दौडनेके समय इससे वहुत अधिक श्वासोच्छ्वास होता है जिससे श्वासयंत्रमें (फेफडेमें) हवाका प्रवेश भी बहुत होता है। श्वास यंत्रमें हवाके अधिक प्रवेश होनेसे शरीरका रक्त (खून) अधिकताके साथ परिष्कृत (साफ) होता है। दौडनेके समय हृदय पिंडमें भी अधिक स्पंदन (फड़कना) होता है। इसी कारण शरीरके समस्त स्थानोंमें अधिकताके साथ रक्तका संचालन होता है, और उसके अधिक चलाचल होनेसे ही शरीरके समस्त अंगोंकी पुष्टि अधिक २ होती जाती है।

शारीरिक परिश्रम करते रहनेसे दूसरा लाभ यह होता है कि दौडनेसे अथवा किसी कार्यको अधिकताके साथ करनेसे शरीरमें पसीना निकल आता है। वह पसीना अनेक दूषित पदार्थोंका वाहक है जिससे शरीरके अनेक

दूषित पदार्थ निकल जाते हैं। यही कारण है कि पसीना आनेसे शरीर अधिक स्वस्थ वा तंदुरुस्त हो जाता है। शारीरिक परिश्रम करनेवालोंकी भूख भी बढ जाती है। भूख में अधिक भोजन कर लिया जाय तो वह भले प्रकार हजम हो जाता है। अतएव जो निरंतर शारीरिक परिश्रम करते हैं उनको छोडकर विद्यार्थी व दिनभर गद्दी तकियों पर बैठे रहनेवाले धनाढ्योंको किसी भी प्रकारका शारीरिक परिश्रम करनेका मौका न मिले तो उनको नित्य नियमित व्यायाम (कसरत) करते रहना चाहिए। क्योंकि यथोपयुक्त व्यायाम करनेसे समस्त शरीरमें बल हो जाता है। व्यायाम नहिं करनेसे मनुष्य आलसी हो जाता है। वे खुद भी अनेक प्रकारके कष्ट पाते हैं और अपने आश्रित जनोंका भी कुछ उपकार नहिं कर सकते।

छोटे बडे लडके प्रायः सभी देशोंमें खेलते रहते हैं। खेलनेवाले लडकोंका शरीर बहुधा स्वस्थ रहता है क्योंकि दौडादौडी करनेसे अथवा अन्य प्रकारके खेलोंमें बल प्रकाश करनेसे हाथ पांव वगेरह सब अंग बलिष्ठ हो जाते हैं। बल्कि उच्च स्वरसे बोलने वा हंसनेसे भी बालकोंकी निरोगता बढ़ती है।

कोई २ बालक इतना खेलते हैं कि खेलनेके लिये पढने लिखनेमें भी मन नहिं लगाते और कोई २ बालक बहुत ही कम खेलते हैं तथा हमारे पश्चिमोत्तर प्रदेश वा

मध्यप्रदेशकी पाठशालाओंके विद्यार्थी बहुत कालतक अटकमें रक्खे जाते हैं। तथा कहीं २ तौ दोनों वक्त पाठशालामें पढ़नेको जाना पडता है और कहीं २ फिर रात्रिको अध्यापक लोग विद्यार्थियोंके घरपर जाकर या अपने घर बुलाकर भी पढ़ाया करते हैं। उन विद्यार्थियोंको व्यायाम करने के लिये हवा खानेके लिए कुछ भी समय नहिं मिलता। इसी कारण वे लडके व्यायामके अभावसे शारीरिक वा मानसिक कमजोरी अधिक हो जानेसे परीक्षाके समय प्रायः फेल हो जाते हैं। यदि कोई २ विद्यार्थी मानसिक अधिक परिश्रम करके पास भी हो गया तौ पास हुए बाद उससे शारीरिक परिश्रमवाले कार्य होना अतिशय कठिन मालूम होते हैं। सो ऐसा कदापि नहिं होना चाहिये क्योंकि मस्तिष्क (मगज) मनका एक यंत्र है व्यायाम करनेसे मस्तिष्क-रक्तका संचार होनेसे मस्तकमें बलाधान होता है। किंचिन्मात्र भी व्यायाम नहिं करनेवाले अनेक विद्यार्थी परीक्षा समय आनेपर रोगी होते देखनेमें आते हैं, और अनेक लडके व्यायाम नहिं करनेसे हमेशहके लिए दुर्बल व रोगी हो जाते हैं। इस कारण सब लडकोंको यथा समय सूर्यास्तके समय एकबार खेल लेना उचित है। बालिकाओंके लिये झूलेमें झूलना वा घरके सब काम करना ही बहुत है। दिन भर बैठे २ लिखने पढनेवालोंको भी विद्यार्थियोंकी तरह व्यायाम करना उचित है परंतु

भूखके समय खाली पेट अथवा भोजनके बाद ही व्यायाम करना कदापि उचित नहीं । हां ! धीरे धीरे मील डेढ मील टहलनेमें कोई हानि नहीं ।

——:o:——

४२. वज्रकुमारकी कथा ।

——:o:——

हस्तिनापुरमें राजा बलि राज्य करते थे, इनके पुरोहित गरुडका लडका सोमदत्त था जो समस्त शास्त्रोंको पढकर एकदफे अपने मामा सुभूतिके यहां अहिक्षत्रपुर गया । जाकर मामासे निवेदन किया—आप मुझे यहांके राजा दुर्मुखके दर्शन करा दीजिये परंतु मामा तो अपने घमंडमें चकचूर था इसवास्ते उसकी कुछ भी न सुनी, और यों ही टाल दिया लेकिन सोमदत्त कुछ अप्रसन्न होकर अकेला ही राज सभामें जा पहुंचा और राजाको दर्बारमें बैठे हुए देखकर आशीर्वाद दिया, साथ २ अपने पांडित्यको भी दर्शा दिया जिसे देखकर राजा बडा प्रसन्न हुआ और उसी समय मंत्री पद पर नियुक्त कर दिया । जब मामा अपने भानजेकी ऐसी बुद्धिमत्तासे परिचित हुआ तो उसने अपनी पुत्री यज्ञदत्ताका विवाह सोमदत्तके साथ कर दिया । कुछ दिन बाद यज्ञदत्ताके गर्भ रह गया और वर्षाकालमें आम खानेका दोहला उत्पन्न हुआ । सोमदत्तको जब यह खबर लगी तो

उसने वहांके सब बगीचोंको ढूंढ डाला, कहीं आम न मिला। केवल एक बगीचेमें आम वृक्षके नीचे सुमित्राचार्य योग लगाये हुए ध्यान कर रहे थे, जिनके प्रतापसे उस आममें खूब फल लग रहे थे। सोमदत्तने अपना मनोरथ सफल देखकर उसमेंसे कुछ आम तोड लिए और एक मनुष्यके हाथ घर भेज दिये और आप स्वयमेव मुनिके पास धर्मश्रवण कर वैराग्यको प्राप्त होगए और तपको ग्रहणकर नानाप्रकार शास्त्र अध्ययन करके नाभिगिरि पर आतापन योगसे स्थिर होगए। उधर यज्ञदत्ताने पुत्रको जना और स्वामीका अपने बंधुवर्गसे वैराग्य सुनकर कुटुंब सहित वह नाभिगिरि पर गई और सोमदत्तको आतापन योगसे स्थित देख अत्यंत क्रोधकर बोली—इस बालककी, जिसका मूलबीज तू है, अपने आप रक्षा कर ऐसा कहकर सोममुनिके चरणोंमें बालकको रख दिया और गाली देती हुई आप घरको लौट आई। इतनेमें ही दिवाकर देव नामका विद्याधर जिसे उनके छोटे भाई पुरंधरने अमरावती नगरीके राज्यसे निकाल दिया था मय स्त्रीके वहां मुनिवंदनाको आया और वहां उस बालकको देखकर उठा लिया और अपनी स्त्रीको देकर वज्रकुमार यह नाम रख दिया। थोडे दिनमें ही वज्रकुमारने अपने मामा विमलवाहन जो कि कनकगिरिके राजा और दिवाकरदेवके साले थे, उनके यहां रहकर समस्त विद्या सीख लीं और क्रमसे युवा अवस्थाको प्राप्त कर

लिया। एक समय पवनवेगा गरुडवेगकी पुत्री हीमंत पर्वत पर प्रज्ञप्ति विद्या साधनेके लिए आई हुई थी उसी समय वज्रकुमार भी वहां गए थे, जब यह विद्या सिद्ध कर रही थी कि जोरसे हवा चलने लगी जिससे एक कांटा उड कर पवनवेगाकी आंखमें चला गया। पवनवेगाका मन उससे कुछ विचलित सा दिखाई दिया ही था कि वज्रकुमारकी दृष्टि उस पर जा पडी और शीघ्र जाकर उस कांटेको निकाल दिया जिससे पवनवेगा अपनी विद्या सिद्ध करनेमें सफली-भूत हुई और वारंवार वज्रकुमारकी प्रशंसा करने लगी और बोली—आपके प्रसादसे ही मुझे यह विद्या सिद्ध हुई है इस लिए आपही मेरे स्वामी होने योग्य हैं। वज्रकुमारने इसे मान लिया और इसके साथ विवाह करके अमरावती चला गया। वहां लडाईमें पुरंधरको हराकर दिवाकरदेवको पुनः राज्य पर स्थापित कर दिया और आरामसे रहने लगा। कुछ दिन बाद दिवाकर देवकी स्त्रीके गर्भ रह गया और पुत्रको पैदा किया अब तो उसे वज्रकुमार बुरा सूझने लगा और विचार करने लगी कि मेरे पुत्रको राज्य न मिलकर इसे ही राज्य मिलेगा। इसप्रकारके वचन एकदफे वज्रकुमारने किसीसे कहते हुए जयश्रीके सुन लिए और सुनकर सीधा पिताके पास गया और बोला—मुझे यह बताइये कि मैं वस्तुतः किसका पुत्र हू जबतक आप सत्य न बतावेंगे तबतक मैं भोजन न करूंगा ऐसे वचन सुनकर दिवाकर देवको पूर्व वृत्तांत यथार्थ कहना

पडा। अब क्या था? वज्रकुमारको अपने गुरुके देखनेकी अभिलाषा हो उठी और बंधुओंसहित मथुराकी क्षत्रिय-गुहामें जा पहुंचा। वहां सोमदत्तको दिवाकरदेवने नमस्कार करके पूर्व सर्व वृत्तांतको कह सुनाया। किंतु वज्रकुमारने अपने सब संबंधियोंको बडे कष्टसे घर लौटाकर स्वयमेव मुनिपद ग्रहण कर लिया। इसी बीचमें मथुराके राजा पूतिगन्ध थे, उनकी रानीका नाम उर्मिला था, उसे धर्मसे बडा प्रेम था और हमेशा धर्मप्रभावनामें लवलीन रहा करती थी, वर्षमें तीन दफे नंदीश्वर पर्वको बडे समारोहसे किया करती थी और जिनेन्द्रदेवकी प्रभावनाके लिए गजरथ निकलवाया करती थी। उसी नगरीमें सागरदत्त शेठ रहते थे, जिनकी स्त्रीका नाम समुद्रदत्ता और पुत्रीका नाम दरिद्रा था। सागरदत्तका मरण हो जाने पर दरिद्रा एक समय किसीके मकानमें पडी हुई हड्डियोंको चचोर (चूस) रही थी, इतनेमें आहारके वास्ते आए हुये दो मुनियोंने उसे देखा उनमेंसे छोटे मुनिने कहा, खेद है! यह विचारी ऐसे तुच्छ पदार्थसे अपनी उदरपूर्ति कर रही है, बडे मुनिने अपने दिव्यज्ञानसे उत्तर दिया—यह अभी दीन जान पड़ती है। परंतु यही यहांके राजाकी पट्टरानी होगी। मुनिने ये वचन कहे ही थे कि उधर भिक्षाकेलिये घूमते हुए धर्मश्रीवंदक जो कि बौद्ध सन्यासी था उसने सुन लिये और यह निश्चय करके कि मुनिके वचन असत्य नहीं होते हैं, उस कन्याको (दरिद्रा)

अपने मठमें लेगया और उसका खूब मिष्ट अन्नसे पोषण किया। एक दफे झूलेमें झूलती हुई दरिद्रा पर राजाकी दृष्टि पड गई और उसके रूपका पान करके अति विरहावस्थाको प्राप्त होगया। मंत्रियोंको जब यह खबर लगी तो उन्होंने वंदकसे राजाके साथ दरिद्राकी शादी करनेको कहा, उसने इन वचनोंपर कि राजा यदि बौद्धधर्मको धारण करेगा तो मैं दरिद्राका विवाह राजाके साथ कर दूंगा, स्वीकार कर लिया। राजा उसके रूपका प्यासा था ही, इसलिये उसके वचनोंको मान लिया और उसके साथ पणिग्रहण कर लिया और वह रानी बना दी, पहले कह आए हैं कि उर्मिला बडी धर्मात्मा थी इसलिये जब फाल्गुणकी अष्टान्हिकामें बडे सजधजसे रथ निकलवाना शुरू किया तो दरिद्रा इसे देखकर विचार करने लगी कि मैं भी बुद्धरथ निकलवाऊंगी और जाकर राजा से निवेदन किया कि उर्मिलाके पहिले मेरा रथ निकलना चाहिये, तब उसको राजाने आज्ञा देदी कि बुद्धरथ ही पहले निकलेगा, जब उर्मिलाको यह खबर लगी तो उसने प्रतिज्ञा कर ली कि यदि मेरा रथ प्रथम न निकलेगा तो अन्न जल कदापि ग्रहण न करूंगी और मर जाऊंगी। ऐसा निश्चय करके क्षत्रिय गुहामें सोमदत्ताचार्यके पास गई, भाग्यसे उसी समय वंदनाके लिये दिवाकर देव आदि विद्याधर भी आए हुए थे। जाकर उर्मिलाने मुनिसे अपना सब हाल कह सुनाया वज्रकुमार मुनि भी वहीं ध्यान लगाये स्थित थे इसलिए

उनने उर्मिलाकी ऐसी प्रतिज्ञा सुनकर दिवाकर देव आदि विद्याधरोंसे कहा कि आप लोग समर्थ हैं आपको रथयात्रा भले प्रकार करा देनी चाहिये इतना सुनते ही सब विद्याधर चल दिये और बुद्धदासी (बुद्धि पट्टरानी) का रथ भंग कर बड़े समारोहसे उर्मिलाका रथ निकलवाया। इसप्रकारके अतिशयको देखकर राजा पट्टरानी व अन्य जन बड़े चकित हुये और सबोंने जिनधर्मको धारण कर लिया।

इसलिये सबको चाहिये कि वज्रकुमार मुनिकी तरह धर्मकी प्रभावना करें जिससे दूसरों पर इस सच्चे धर्मका असर पड़े और उसका माहात्म्य प्रकाशित हो, तथा दूसरोंका व अपना कल्याण हो सके।

४३. श्रावकाचार पंचम भाग।

पांच अणुव्रतोंका स्वरूप।

हिंसा मिथ्या चोरी मैथुन, और परिग्रह जो हैं पाप।
स्थूल रूपसे इन्हें छोड़ना, कहा अणुव्रत प्रभुने आप ॥
निरतिचार इनको पालनकर, पाते हैं मानव सुर लोक।
वहां अष्टगुण अवधि ज्ञान त्यों, दिव्य देह मिलते हतशोक ॥

इसका अर्थ स्पष्ट है इसलिये नहीं लिखा।

१ अष्टऋद्धियें।

अहिंसाणुव्रत ।

तीन योग औ तीन करणसे, त्रस जीवोंका वध तजना ।
कहा अहिंसाणुव्रत ज्ञाता, इसको नित पालन करना ॥
इसी अहिंसाणुव्रतके हैं, कहलाते पंचातीचार ।
छेदन भेदन भोज्य निवारण, पीडन वहुत लादना भार ॥

मन वचन काय और कृत कारित अनुमोदनासे त्रस जीवोंकी हिंसाका त्याग करना सो अहिंसाणुव्रत है और किसी जीवका छेदन, भेदन, आहार वंद करना, पीडा देना और वहुत भार लादना ये पांच इस व्रतके अतीचार हैं ॥

अहिंसाणुव्रत और हिंसामें प्रसिद्ध होनेवालोंका नाम ।

इसी अणुव्रतके पालनसे, जाति पांतिका था चंडाल ।
तौभी सव प्रकार सुख पाया, कीर्त्तिमान् होकर यमपाल ॥
नहीं पालनेसे इस व्रतके, हिंसारत हो सेठानी ।
हुई धनश्री ऐसी जिसकी, दुर्गति नहिं जाती जानी ॥ ४७ ॥

इस अहिंसाणुव्रतके पालनेमें यमपाल नामका चांडाल प्रसिद्ध हुवा है और इस व्रतको न पालकर हिंसामें रत हो कर धनश्री नामकी सेठानी दुर्गतिकी पात्र हुई है ॥ ४७ ॥

सत्याणुव्रत ।

वोलै झूट न झूठ वुलावे, कहै न सच भी दुखकारी ।
स्थूल झूठसे विरक्त होवे, है सत्याणुव्रत धारी ॥
निंदा करना धरोह हरना, कूट लेख लिखना परिवाद ।
गुप्त वातको जाहिर करना, ये इसके अतिचार प्रमाद ॥

जो स्थूल झूठ न तौ आप बोलै, और न दूसरेसे बुल-वावे तथा ऐसा सत्य वचन भी न बोलै जिससे कि दूसरे को दुःख वा हानि हो, उसे सत्याणुव्रत कहते हैं और परकी निंदा करना, धरोहर हरलेना, झूठा लिखना, चुगली करना, और किसीकी गुप्त बातका प्रगट करदेना ये पांच इस सत्याणुव्रतके अतीचार हैं ॥ ४८ ॥

सत्याणुव्रतमें व झूठ बोलनेमें प्रसिद्ध होनेवालोंका नाम ।

इस व्रतके पालन करनेसे, पूज्य शेठ धनदेव हुआ ।
नहिं पाल मिथ्या रत होकर, सत्यघोष त्यों दुखी मुआ ॥
मिथ्यावाणी ऐसी ही है, सब जगको संकटदाई ॥
इसे हटाओ नहीं लडाओ, समझाओ सबको भाई ॥ ४९ ॥

इस सत्याणुव्रतको पूर्णतया पालनेसे धनदेव नामका शेठ पूजनीय हुवा है और सत्यघोष नामके ब्राह्मणने झूठ बोलनेमें प्रसिद्ध होकर महान दुःख पाया है ॥ ४९ ॥

अचौर्याणुव्रत ।

गिरा पडा भूला रक्खा त्यों, विना दिया परका धनसार ।
लेना नही न देना परको, है अचौर्य इसके अतिचार ॥
माल चौर्यका लेना, चोरी—ढँग बतलाना छल करना ।
माल मेलमें नापतोलमें, भंग राजविधिका करना ॥ ५० ॥

गिरा हुवा, पडा हुवा, रखा हुवा, दूसरेका धन वगेरह वस्तु ग्रहण न करना वा उठाकर दूसरेको न देना सो अचौर्याणुव्रत है, और चौरीका माल लेना, चौरीका उपाय

बताना, अधिक मूल्यकी वस्तुमें थोडे मूल्यकी वस्तु मिला कर चला देना, तोल नापके बांट तराजू गज वगैरहमें न्यूनाधिक करना, और राजाकी आज्ञाका उल्लंघन करना ये पांच इस वृतके अतीचार हैं ॥ ५० ॥

अचौर्याणुव्रत और चोरीमें प्रसिद्ध होनेवालोंका नाम।

इस व्रतको पालन करनेसे, वारिषेण जगमें भाया।
नहीं पालनेसे दुख बादल, खूब तापसी पर छाया ॥
जो मनुष्य इस व्रतको पालै, नहीं जगतमें क्यों भावै।
क्यों नहिं उसकी शोभा छावै, क्यों न जगत सब जस गावै ॥

इस अचौर्याणुव्रतके पालन करनेमें वारिषेण नामका राजकुमार प्रसिद्ध हुवा और नहीं पालनेसे अर्थात चौरी करनेमें एक तापसी निंदित हुवा है ॥ ५१ ॥

ब्रह्मचर्याणुव्रत।

पापभीरु हो परदारासे, नहीं गमन जो करता है।
तथा औरको इस कुकर्ममें, कभी प्रवृत्त न करता है ॥
ब्रह्मचर्य व्रत है यह सुंदर, पांच इसीके हैं अतीचार।
इन्हें भली विध अपने जीमें, मित्रो लीजे खूब विचार ॥ ५२ ॥
भंडवचन कहना, निशिवासर, अतितृष्णा वियमें रखना।
व्यभिचारिणी स्त्रियोंमें जाना, औ अनंगक्रीडा करना ॥
औरोंकी शादी करवाना, इन्हें छोडकर व्रत पाला।
वणिकसुता नीलीने नीके, कोतवालने नहिं पाला ॥ ५३ ॥

अपनी स्त्रीके सिवाय अन्य स्त्रीसे न तौ आप रमैं और न दूसरेको गमन करावे, इसको परस्त्रीत्याग वा स्वदार-संतोष नामा अणुव्रत कहते हैं। मंडवचन कहना, अपनी स्त्रीमें भी अधिकतृष्णा रखना, व्यभिचारिणी स्त्रियोंसे संबंध रखना, अनंगक्रीडा करना, और दूसरोंका सगाई व्याह कराना, ये पांच इसव्रतके अतीचार हैं इस शीलव्रतके पालनेमें शेठकी पुत्री नीली, और परस्त्री सेवन पापमें यमपाल नामा कोतवाल प्रसिद्ध हुवा है ॥ ५२-५३ ॥

परिग्रह परिमाण अणुव्रत।

आवश्यक धन धान्यादिकका, अपने मनमें करि परिमाण।
इससे आगे नहीं चाहना, सो है व्रत इच्छापरिमाण ॥
अतिवाहन, अतिसंग्रह, विस्मय, लोभ, लादना अतिशय भार।
इसव्रतके बोले जाते हैं, मित्रो ये पांचों अतिचार ॥ ५४ ॥

दोहा-भूमि, थान, धन धान्य गृह, भाजन कुप्य अपार।
शयनासन, चौपद दुपद, परिग्रह दश परकार ॥ १ ॥

इन दश प्रकारके परिग्रहोंका परिमाण करके शेषको छोडदेना सो परिग्रह परिमाण नामका अणुव्रत है। विना जरूरतके बहुतसे वाहन रखने, वा बहुतसी वस्तुयें संग्रह करना, दूसरेका ऐश्वर्य देखकर आश्चर्य करना, अति लोभ करना, और पशुवोंपर अतिशय भार लादना ये पांच इस व्रतके अतीचार हैं ॥ ५४ ॥

परिग्रह परिमाण व्रत और पापमें प्रसिद्ध होनेवालोंका नाम व गृहस्थके अष्टमूल गुण।

जयकुमारने इस वर व्रतको, पालन करके सुख पाया।
वैश्य 'मूछमक्खन' नहिं पाला 'हाय द्रव्य' कर दुख पाया॥
पांच अणुव्रत कहे इन्हीमें, मद्य मांस मधुका जो त्याग।
मिल जावै तौ आठ मूलगुण, हो जाते हैं गृही-सुहाग॥

जयकुमारने इस परिग्रहपरिमाण व्रतको पालन कर सुख पाया है और मूछमक्खन नामके लुब्धक वैश्यने अति लोभ करके इस व्रतके पालनेमें दुःख उठाया है।

इन पांचों अणुव्रतोंको धारण करने और मद्य मांस मधु इन तीन अभक्ष्योंका त्याग करनेसे श्रावकके आठ मूल गुण हो जाते हैं॥ ५५॥

४४. यमपालनामा चंडालकी कथा।

पूर्वकालमें सुरम्य नामके देशमें पोदनपुर नामका नगर था. उसका राजा महाबल था. उसी नगरमें एक यमपाल नामका चंडाल रहता था. जीवोंकी हिंसा करना ही उसका रोजगार था।

एकदिन उस चंडालको सर्पने काट खाया सो उसे मरा जान उसके कुटुंबियोंने दग्ध करनेको नगरसे दूर श्मशान भूमिमें लाकर रक्खा था. उसी जगहँ सर्वौषधिऋद्धिके धारक

मुनिमहाराज ध्यानस्थ बैठे थे, सो उनके शरीरकी वायुसे वह चंडाल निर्विष होकर जीवित होगया–और मुनिराजके चरणोंमें भक्तिपूर्वक नमस्कार करके अपने कल्याणार्थ कुछ व्रत ग्रहण करनेकी इच्छा प्रगट की. मुनिमहाराजने उसकी हिंसोपजीविका सुनकर उससे कहा कि "तुम चतुर्दशीके दिन जीवहिंसा करना त्याग दो" उसने पंद्रह दिनमें एकदिनका हिंसात्याग करना सहज समझकर दृढप्रतिज्ञा करली कि— प्राण जांय परंतु चतुर्दशीके दिन किसी जीवको न मारूंगा।

ठीक उसी समय अष्टाह्निका पर्व था. सो महाबल राजा ने "आठ दिनतक कोई भी किसी जीवको न मारै" ऐसा ढंढोरा शहरभरमें पिटवा दिया था. किंतु राजपुत्र बलकुमार मांसभोजी था. सो उससे विना मांसके रहा नहिं गया, उसने राज्योपवनमें राजकीय मेंढेको प्रच्छन्नभावसे मारकर व पकाकर खाया। जब राजाने मेंढेकी खोज कराई तो बाग-मालीके द्वारा ज्ञात हुआ कि राजपुत्र ही इस अपराधका अपराधी है। "मेरा पुत्र ही मेरी आज्ञाका खंडन करता है" इस बातपर राजाको बडा क्रोध हुआ. उसने तत्काल ही चंडालके द्वारा माथा कटवानेका हुक्म दिया. दैवयोगसे उस दिन चतुर्दशी थी और उसी यमपाल चंडालको राजकुमारके वध करनेका हुक्म हुआ. राजभृत्य (सिपाही) उसके घर बुलानेको गये तो वह चंडाल अपने ग्रहण किये हुये अहिंसा-व्रतकी रक्षार्थ छिप गया और अपनी स्त्रीको सिखा दिया कि

मुझे कोई बुलानेको आवै तो कह देना कि–"वह ग्रामान्तर गया है।" उसने राजभृत्योंके पूछनेपर वैसा ही कह दिया। राजभृत्योंने कहा कि "देखो भाग्यहीनता (कमनसीबी) इसको कहते हैं कि आज राजपुत्रके मारनेमें इस चंडालको हजारोंका गहना मिलता, उमर भरके लिये निहाल होजाता परन्तु भाग्यमें वही जंगली जीवोंको मारकर उमर भर दुःखपाना लिखा है इसीकारण आज गांवको चला गया।"

इसप्रकार राजभृत्योंके वचन सुननेसे चंडालिनीको लोभने चुप नहिं रहने दिया और उसने हाथका इशारा करके यमपालको बता दिया. राजभृत्योंने उसे पकडकर राजाज्ञा सुनाई कि इस राजपुत्रको मार डालो। यमपालने कहा कि आज चतुर्दशीके दिन मैं जीवहिंसा नहिं कर सक्ता लाचार राजभृत्योंने उस चंडालको राजाज्ञालोप करनेके अपराधमें राजाके सम्मुख उपस्थित (हाजिर) किया। राजाने उससे कहा कि "क्यों वे! तू मेरी आज्ञाको नहिं मानता?" चंडालने कहा–हजूर! मैं सर्पके दंशनसे मरा हुआ मसानभूमि में पडा था. एक मुनिमहाराजके शरीरकी हवासे मैं जीवित हो गया। उन महात्मासे मैंने यावज्जीव हर चतुर्दशीके दिन हिंसा करना छोड दिया है. सो आप चाहें मुझे भी शूलीपर धर दें परन्तु मैं आज किसी भी जीवको मारकर मुनिमहाराजके दिये हुये अहिंसाव्रतको भंग नहिं कर सक्ता. राजाने लाचार होकर हुक्म दिया कि "इस चंडाल और

दुष्ट पुत्र दोनोंको दृढ बंधनोंसे वांध कर समुद्रमें डाल दो" राजभृत्योंने तत्काल राजाज्ञाका पालन किया अर्थात् दोनोंको बांधकर समुद्रमें डाल दिया. किंतु चंडालके दृढ अहिंसाव्रत के प्रभावसे जलदेवताओंने उन दोनोंकी रक्षा की अर्थात् मणिमंडित नौकापर रत्नजडित सिंहासनपर तो चंडाल बैठा है और राजपुत्र उसपर चमर दुरांता है और जलदेवता तथा अन्य देवगण आकाशमेंसे चंडालके अहिंसाव्रतको धन्य २ कहते हुये पुष्पवृष्टि करते हैं. इसप्रकार अहिंसाव्रतके प्रभाव को देखकर महाबल राजाने भी उस चंडालकी अनेक तरह प्रशंसा की।

चंडाल भी एक दिनके अहिंसा व्रतका प्रत्यक्ष महा फल देखकर सम्यक्त्व सहित पंचाणुव्रत और सप्तशील धारण करके व्रती श्रावक हो गया। उसके व्रतका प्रभाव देखकर हजारों नगरनिवासी स्त्रीपुरुषोंने भी अहिंसादि पंचाणुव्रत धारण किये. तबहीसे जैनशास्त्रोंमें इस चंडालकी कथा अहिंसाव्रतके प्रभाव दिखानेके लिये यत्र तत्र उदाहरणार्थ लिखी है।

हे बालको! तुमको भी मनवचनकायसे यथाशक्ति त्रस जीवोंको (चलते फिरते जीवोंको) मारने वा किसी प्रकारकी पीडा देनेका त्याग करना चाहिये क्योंकि जैनियोंका यही एक सर्वमतसम्मत प धर्म है।

४५ । भूधर जैननीत्युपदेशसंग्रह पांचवां भाग ।

कुकविनिंदा ।

मत्तगयंद ।

राग उदै जग अंध भयौ, सहजैं सब लोगन लाज गवांई ।
सीख विना नर सीख रहे, विषयादिक सेवनकी सुघराई ॥
तापैर और रचैं रसकाव्य, कहा कहिये तिनकी निठुराई ।
अंध असूझनकी अँखियानमें, झोंकत हैं रज राम दुहाई ॥
कंचन कुंभनकी उपमा कहिदेत, उरोजनको कवि बारे ।
ऊपर श्यामविलोकतकै, मनिनीलमकी ढकनी ढँकि छारे ॥
यौं सतबैन कहैं न कुपंडित, ये जुग आमिषपिंड उघारे ।
साधन झार दई मुख छार, भये यहि हेत किधौं कुच कारे ॥
ए विधि भूलभई तुमतें, समुझे न कहा कस्तूरि बनाई ।
दीन कुरंगनके तनमें, तृन दंत धरैं करुना किन आई ॥
क्यों न करी तिन जीभन जे, रसकाव्य करैं परकौं दुखदाई ।
साधु अनुग्रह दुर्जन दंड, दोऊ सधते विसरी चतुराई ॥

---

१ 'विसनादिक सेवनकी" तथा 'वनिता सुख सेवनकी' ऐसा भी पाठ है २ तापर रीझि रचैं रसकाव्य, बडे निरदे कुमती कवि भाई । ऐसा भी पाठ है। ३ मेलत है, ऐसा भी पाठ है। ४ बालक-मूर्ख ५ मांसके लोंदे ६ मृगोंके शरीरमें कस्तूरी बनाई सो बडी भूल की ७ परको दुखदायक रसकी कविता करनेवाले कवियोंकी जीभोंमें कस्तूरी बनाते, तो अच्छा होता क्योंकि

मनरूपी हाथीको वश करनेका उपदेश।

ज्ञान महावल डारि, सुमति संकल गहि खंडै।
गुरु अंकुश नहि गिनै, ब्रह्मव्रत-विरख विहंडै॥
कर सिधंत सरन्हौन, केलि अघ-रजसौं ठानै।
करनै चपलता धरै, कुमतिकरनी रति मानै॥
डोलत सुछंद मदमत्त अति, गुण पथिक न आवत उरै।
वैराग्य खंभतैं बांध नर, मन-मतंग विचरत बुरै॥ ४॥

गुरु उपकार।

कवित्त मनहर।

दईसी सराय काय पंथी जीव परयो आय,
रत्नत्रय निधि जापै मोक्ष जाको घर है।
मिथ्यानिशि कारी जहां मोह अंधकार भारी,
कामादिकतस्कर[12] समूहनको थर[13] है॥
सोवै जो अचेत सोई खोवै निज संपदाको,
तहां गुरु पाहरू[14] पुकारै दया कर है।
गाफिल न हूजे भ्रात ऐसी है अंधेरी रात,
"जागरे बटोही यहां चोरनको डर है"॥ ५॥

कस्तूरीके लिये उनकी जीमें काटी जातीं, साधु अर्थात् भले जीवोंपर अनुग्रह (दया) होती और दुष्ट कवियोंको दंड मिल जाता ८ ब्रह्मचर्य रूपी वृक्ष। ९ कानोकी चपलता अथवा इंद्रियोंके विषयोंकी चपलता १० हथिनी। ११ गुणरूपी मुसाफिर पास भी नहिं आते। १२ चौर। १३ थल-स्थल। १४ पहरेदार।

कषाय जीतनेका उपाय।

मत्तगयंद।

छेम निवास छिमाधुवैंनो विन, क्रोध पिशाच उरै न टरैगो।
कोमल भाव उपाव विना, यह मान महामद कौन हरैगो॥
आर्जवसार—कुठार विना, छलवेल निकंदन कौन करैगो।
तोषशिरोमनि मंत्र पढ़े विन, लोभफणी विष क्यों उतरैगो॥

मिष्टवचन बोलनेका उपदेश

काहेको बोलत बोल बुरे नर, नाहक क्यों जस धर्म गुमावै।
कोमल बैन चवै किन ऐनं, लगै कछु है न सवै मन भावै॥
तालु छिदै रसना न भिदै, न घटै कछु अंक दरिद्र न आवै।
जीभ कहै जिय हानि नहीं, तुझ जी सब जीवनको सुख पावै॥

धैर्यधारण करनेका उपदेश।

कवित मनहर।

आयो है अचानक भयानक असाता कर्म,
ताके दूर करवेको बली कौन अहरे।
जे जे मन भाये ते कमाये पूर्व पाप आप,
तेई अब आये, निज उदैकाल लहरे॥

---

४ क्षमारूपी धूनी। ५ आर्जव (सरलता) रूपी पौलाद कुल्हाडीके विना। ६ संतोषरूपी उत्कृष्टमंत्र। ७ लोभ रूपी सर्पका जहर। ८ बोलै। ९ क्यों नहीं। १० अच्छे ११ पलेमें १२ जीभ कहती है कि हे जीव मिष्टवचन बोलनेमें तेरी कुछ हानि नहीं है और सब जीवोंका जी सुख पाता है।

एरे मेरे वीर काहे होत है अधीर यामें,
कोऊको न सीर[1] तू अकेलो आप सहरे।
भये दिलगीर[2] कछू पीर न विनसि जाय,
ताहीतैं सयाने, तू तमासगीर रहरे॥ ८॥

---:o:---

४६. धनश्रीकी कथा।

---:o:---

भृगुकच्छ नगरमें राजा लोकपाल थे। वहीं धनपाल सेठ रहता था जिसकी स्त्रीका नाम धनश्री था जो बडी दुष्ट और हिंसक थी। उन दोनोंके पुत्र गुणपाल और पुत्री सुंदरी ये दो संतान पैदा हुई किंतु इसके पहिले धनश्री व धनपालने एक बालक जिसका नाम कुंडल था रख छोडा था और उसीको अपना लडका समझ रक्खा था। जब धनपाल मरगया तो धनश्रीने उस कुंडलके साथ ही पति समझकर कुकर्म करना शुरू कर दिया। थोडे दिन बाद गुणपाल को यह खबर लगगई थी परन्तु पुत्र होनेसे वह कुछ कह नहीं सकता था और यह बात धनश्रीको भी खटकने लगी थी कि गुणपाल किसी तरह मरजाय तो मेरा वेरोकटोक कामसेवन हो सके, इसलिये धनश्रीने कुंडलसे रात्रिमें कहा कि कल तुम गोचराने गुणपालको भेजदेना और पीछेसे जाकर

---

१ साझा। २ चिंतत-दुखी।

मार डालना जिससे हमारे तुम्हारे कामसेवनमें किसी प्रकार की बाधा न आसकेगी, पासमें ही सुंदरी खडी थी और उसने यह सुनकर गुणपालसे कह दिया कि भाई ! तुम कल होशयार रहना, तुम्हें कुंडलके हाथ माता मरवानेवाली है, सुबह होते ही धनश्रीने गुणपालसे कहा कि बेटा ! आज तुम गौवोंको लेकर चरा लाओ, कुंडलकी तबियत खराब है, वह बेचारा सब समझ गया परन्तु माताकी आज्ञानुकूल गोधन लेकर हार (वन) को चला गया और अपने कपडे उतार कर एक काठके टुकडेको पहिना दिये एवं स्वयं छिपकर वहीं बैठ गया। जब कुंडल हाथमें तलवार लेकर आया तो उस काठको ही गुणपाल समझकर अपनी तलवार उसपर चलादी वहीं लुका गुणपाल बैठा था वह धीरेसे उठकर कुंडलके पास आया और एक तलवार ऐसी मारी कि कुंडलका शिर अलग होगया और वहांसे चलकर घर आगया। जब धनश्रीने कुंडलको घर आया हुआ न देखा तो बोली—कुंडल कहां है ? उसने कहा मुझे मालूम नहीं है इस तलवारसे पूछ ले, जब उसने तलवार देखी तो वह खूनसे लाल हो रही थी। धनश्री समझ गई कि पापीने उसे मारडाला है। इसलिए उसने तलवार लेकर गुणपालको मारडाला, यह देखकर सुंदरी दौडी और मूसलसे धनश्री को मारना शुरू किया जब इस कोलाहलको कोतवालने सुना तो शीघ्र दौडा आया और धनश्रीको पकडकर राजा

के पास ले गया। राजाने गर्दभ पर चढाकर सारे शहरमें फिराया और नाक कान काट लिए ऐसी दुर्दशा होनेपर धनश्री मरगई और मरकर नरकादि गतिको प्राप्त हुई।

पूर्वोक्त कथाका सारांश यही है कि जो दूसरोंका घात नहिं बल्कि बुरा भी विचारता है वह इसलोक और परलोकमें भी दुःख प्राप्त करता है जैसा कि धनश्रीके दृष्टान्तसे मालूम पडा।

——:o:——

४७. श्रावकाचार छठा भाग।

——:o:——

तीन गुणव्रत।

मूलगुणोंकी बढ़ती होवे, इसके लिये गुणाव्रत तीन।
कहे श्रेष्ठ पुरुषोंने नीके, जिनसे होवें जन दुखहीन॥
दिग्व्रत और अनर्थ दंडव्रत, व्रत भोगोपभोगपरिमाण।
इनको धारण करें भव्यजन, मान शास्त्रको सुदृढ प्रमाण॥

जिनव्रतोंके धारण करनेसे ऊपर लिखे मूलगुणोंकी वृद्धि हो उन्हें गुणव्रत कहते हैं। वे गुणव्रत, दिग्व्रत, अनर्थदंडव्रत, और भोगोपभोगपरिमाणके भेदसे तीन प्रकारके हैं॥ ५६॥

दिग्व्रतका स्वरूप।

अमुक नदी तक अमुक शैल तक, अमुक गांव तक जाऊंगा।
दशो दिशामें अमुक कोससे, आगे पद न बढ़ाऊंगा॥

ऐसी कर मर्यादा आगे, कभी उमर भर नहिं जाना।
सूक्ष्म पापनाशक दिग्व्रत यह, इसे सज्जनोंने माना ॥५७॥

अमुक नदी तक, अमुक पर्वत तक, अमुक गांवतक वा अमुक मील तक दशों दिशाओंमें जानेका परिमाण करके इसके आगे यावज्जीव न जाऊंगा, इस प्रकार त्याग करना सो दिग्व्रत है ॥ ५७ ॥

दिग्व्रतका फल ।

जो दिग्व्रतका पालन करते, उन्हें नहीं होता है पाप।
मर्यादाके बाहर उनके, अणुव्रत होय महाव्रत आप ॥
प्रत्याख्यानावरण बहुत ही, मित्रो कृशतर हो जाते।
इससे कर्म चारित्र मोहिनी, मंद मंद तर पड जाते ॥५८॥

जो इस दिग्व्रतका पालन करते हैं उनके मर्यादासे बाहर पांचों पापोंका सर्वथा त्याग हो जानेके कारण उपर्युक्त पांच अणुव्रत पांच महाव्रत सरीखे हो जाते हैं यद्यपि चारित्र मोहिनी कर्मके प्रत्याख्यानावरणी क्रोध मान माया लोभ ये ४ कषाय अति मंदतर हो जाते हैं परंतु साक्षात् महाव्रत नहिं होते क्योंकि—

महाव्रतका लक्षण ।

तन मन वचन योगसे मित्रो, कृत कारित अनुमोदन कर।
होते हैं नौ भेद, इन्हीसे, तजना पांचो पाप प्रखर ॥
कहे जगतमें ये जाते हैं, पंच महाव्रत सुखकारी।
बहुत अंशमें महाव्रतीसा, हो जाता दिग्व्रतधारी ॥ ५९ ॥

मन वचन काय कृत कारित अनुमोदनासे पांचों पापोंका सर्वथा त्याग कर देनेको पंच महाव्रत कहते हैं ॥ ५९ ॥

दिग्व्रतके पांच अतीचार ।

दशों दिशाकी जो मर्यादा, की हो उसे न रखना याद ।
भूलभाल उसको तज देना, या तज देना धार प्रमाद ॥
ऊंचे नीचे आगे पीछे, अलग बगल मित्रो बढना ।
दिग्व्रतके अतिचार कहाते, याद न मर्यादा रखना ॥६०॥

अज्ञान वा प्रमादसे ऊपरकी १ नीचेकी २ तथा विदिशाओंकी मर्यादाका उल्लंघन करना ३ क्षेत्रकी मर्यादा बढा लेना ४ की हुई मर्यादाओंको भूल जाना ५ ये पांच दिग्व्रतके अतीचार माने गए हैं ॥ ६० ॥

अनर्थ दंड विरति ।

दिग मर्यादा जो की होवे, उसके भीतर भी बिनकाम ।
पापयोगसे विरक्त होना, है अनर्थ दण्डव्रत नाम ॥
हिंसादान प्रमादचर्या, पापादेश कथन अपध्यान ।
त्यों ही दुःश्रुति पांचों ही ये, इस व्रतके हैं भेद सुजान ॥६१॥

दिग्व्रतमें की हुई मर्यादाके भीतर भी विनाप्रयोजन पापके कारणोंसे विरक्त होना सो अनर्थदण्डविरति व्रत है । इसके हिंसादान, प्रमादचर्या, पापोपदेश, अपध्यान और दुःश्रुति ये पांच भेद हैं ॥ ६१ ॥

हिंसादान अनर्थ दंड ।

छुरी कटारी खडग खुनीता, अन्यायुध फरसा तलवार ।

सांकल सींगी अस्त्र-शस्त्रका, देना जिनसे होवै वार ॥
हिंसादान नामका मित्रो, कहलाता है अनरथ दंड ।
बुधजन इसको तज देते हैं, क्यों नहिं होवे युद्ध प्रचंड ॥६२॥

छुरी, कटारी, तलवार, बंदूक, फावडा, खुनीता, अग्नि, सांकल, सींगी, आदि हिंसा करनेवाले पदार्थ किसीको मांगे देना सो हिंसादान नामका अनर्थ दंड है ॥ ६२ ॥

प्रमादचर्या ।

पृथ्वी पानी अग्नि वायुका, विना काम आरम्भ करना ।
व्यर्थ छेदना वनस्पतीको, वे मतलब चलना फिरना ॥
औरोंको भी व्यर्थ घुमाना, है प्रमादचर्या दुखकर ।
कहा अनर्थ दंड है इसको शुभ चाहै तौ इससे डर ॥ ६३ ॥

विना प्रयोजन पृथ्वी खोदना, पानी वखेरना, हवा चलाना, वनस्पतीको छेदना तथा विना मतलब ही चलना फिरना औरोंको भी फिराना इत्यादि प्रमादचर्या नामका अनर्थ दंड है इसलिये इन क्रियाओंको भी छोड देना चाहिए ।

पापोपदेश या पापादेश ।

जिससे धोका देना आवे, मनुज करै त्यों हिंसारंभ ।
तिर्यंचोंको संकट देवे, वणिज करै फैलाकर दंभ ॥
ऐसी ऐसी बातैं करना, पापादेश कहाता है ।
इस अनर्थ दंडको तजकर, उत्तम नर सुख पाता है ॥

जिन बातोंको वा कथाके प्रसंग उठानेसे, तिर्यंचोंको

क्लेश पहुंचै ऐसा वाणिज्य तथा हिंसा, आरंभ, ठगाई हो, उसे पापोपदेश नामा अनर्थ दंड कहते हैं ॥ ६४ ॥

अपध्याननामा अनर्थ दंड ।

राग द्वेषके वशमें होकर, करते रहना ऐसा ध्यान ।
उसकी स्त्री सुत मर जावे, नश जावे उसके धनधान ॥
वह मर जावे, वह कट जावे, उसको होवे जेल महान ।
वह लुट जावे, संकट पावे, है अनर्थ दण्डक अपध्यान ॥

राग द्वेषके वशीभूत होकर किसीके स्त्री पुत्रादिकोंका बुरा चाहना वा मरजाने, कैद होने, लुट जाने, आदिका हर समय चितवन करना सो अपध्यान नामा अनर्थ दंड है ॥

दुःश्रुतिनाम अनर्थ दंड ।

जिनके कारणसे जागृत हों, राग द्वेष मद काम विकार ।
आरंभ साहस और परिग्रह, त्यों छावै मिथ्यात्व विचार ॥
मन मैला जिनसे हो जावै, प्यारे सुनना ऐसे ग्रंथ ।
दुःश्रुतिनाम अनर्थ कहाता, कहते हैं ज्ञानी निर्ग्रंथ ॥ ६५ ॥

जिन ग्रन्थोंके पढने सुननेसे, राग द्वेष मद काम विकार उत्पन्न हो तथा आरम्भ, दुःसाहस, परिग्रह, मिथ्यात्वमें रत हो जावें ऐसे ग्रंथोंका पढना सुनना दुःश्रुति नामका अनर्थ-दंड कहलाता है ॥ ६६ ॥

अनर्थदंड व्रतके पांच अतीचार ।

राग भावसे हँसी दिल्लगी, करना भंड वचन कहना ।
बकबक करना आंख लडाना, काय कुचेष्टाका वहना ॥

सज धजके सामान बढाना, विना विचारे त्यों प्रियवर ॥
तन मन वचन लगाना कृतिमें, हैं अतिचार सभी व्रतहर ॥

राग भावसे हास्य मिश्रित भंड वचन बोलना, काय की कुचेष्टा करना, कामवर्द्धक इशारे करना वा प्रयोजन रहित अधिकताके साथ वृथा बकवाद करना, विना प्रयोजन भोग उपभोगकी सामग्री बढाना, प्रयोजनका अंदाज किये विना ही कुछ करना, वा प्रयोजनरहित अधिकताके साथ मन वचन कायको प्रवर्त्ताना ये पांच अनर्थदंडविरति नामक गुण व्रतके अतीचार हैं ॥ ६७ ॥

——:०:——

४८. सत्यवादी धनदेवकी कथा।

——:०:——

जंबूद्वीपके पूर्वविदेहमें पुष्कलावती देश है उस देशकी पुंडरीक नगरीमें जिनदेव और धनदेव दो सेठ रहते थे, दोनोंने एक दफे धन कमानेके लिये परदेश जानेका ठहराव किया और यह भी तय करलिया कि उसमें जो लाभ होगा वह आधा आधा बांट लेंगे ऐसा निश्चय करके दोनों परदेशको रवाना हो गए और वहां बहुतसा धन कमाकर कुशलपूर्वक अपने घर आगए, जब फायदा हुए धनका आधा बांटनेका मौका आया तब जिनदेवने धनदेव से कहा कि मैंने कब कहा था कि आधा हिस्सा लाभका

दूंगा ! मैने तो सिर्फ इतना ही कहा था कि तुम मेरे साथ चलो मैं तुम्हारे परिश्रमके अनुकूल तुम्हे कुछ धन देदूंगा इसलिये आपको मैं उतना देनेके लिये अवश्य तयार हूं। धनदेवने जब जिनदेव की ऐसी बातें सुनीं तो उसने न्याया-लयमें जाकर राजा व अन्यजनोंके समक्ष अपना सब किस्सा कह सुनाया उसी समय राजाने जिनदेवको बुलाया और सत्य २ कह देनेको कहा परंतु जिनदेवने सत्यव्रतकी कुछ परवाह न करके पूर्वोक्त ही कहा। अब तो राजा बडे सन्देहमें पड गया और विचारने लगा-इनकी परीक्षा कैसे की जाय कि इन्हमें कौन सच्चा है और कौन झूठा, थोडी देरमें राजा को एक युक्ति सूझ पडी और बोला कि इन दोनोंके हाथो-पर जलते हुए अंगारे रख दो। इनमें जो सच्चा होगा उसके हाथ न जलेंगे और झूठेके जल जायेंगे। राजाके ऐसे वचन सुनते ही जिनदेवका खून सूख गया। उधर राजाने वैसा ही किया। धनदेव तो अंगारेको बडी आसानीसे रक्खे रहा, उसे यह भी मालूम नहिं पडा कि मेरे हाथ पर अग्नि रक्खी है या और कुछ, किंतु जिनदेवका हाथ अग्निपर रखते ही जलने लगा और उसके तेजको न सहन कर जिनदेव ने शीघ्र हाथसे अग्नि गिरा दी। यह देखते ही राजा व अन्य सबोंको विश्वास होगया कि जिनदेव बिल्हुल झूठा है। बस! राजाने धनदेवको ही सब धन दिवा दिया और जिन-देवको ठगी और झूठा इत्यादि शब्द कहकर अपने दरबार

से निकाल दिया। उस धनदेवकी ऐसी सत्यता देखकर साधुओंने भी प्रशंसा की और उस दिनसे धनदेवकी घर २ सत्कार होने लगा। ठीक है, सत्यके सामने झूठ कहांतक अपना राज्य कर सकता है इस लिये सबको चाहिये कि हमेशा सत्यका ही सहारा लेवें और झूठको निकाल देवें।

---

४९. जूवा निषेध।

किसी तरहकी शर्त लगाकर उसपर रुपये पैसे लेना देना उसको जूआ कहते हैं। जैसे आज कल बहुतसे जूवारी "शामतक मेह आजाय तो तुमको दश रुपये देदिये जायगें यदि नहि आया तो जो एक रुपया देते हो सो मेरा होगया।" इसको पानी वा नालीका जूआ कहते हैं। तथा 'आज विलायतमें दशहजार रूईकी गांठोंका बेचाण आया तो पांच रुपये तुम्हें देदिये जांयगे न्यूनाधिक आया तो तुमारा एक रुपया जो हमको दिया है सो हमारा होगया।' अथवा अफीमका प्रतिमास नीलाम होता है उस नीलाममें यदि ४ का वा पांचका अंक आवैगा तो हम इतना रुपया देदेंगे नहि तो जो १) रुपया देते हो सो हम खागये। इसी प्रकार अफीमके दड़े पर लगाया जाता है। इन सबको अफीमका सट्टा कहते हैं। इसके सिवाय दीवाली वगेरह पर वा बारहों महीना

कौडियोंकी मूठ लाकर छक्के पंजे खेलते हैं उसमें एक २ दाव पर पैसे रुपये रख देते हैं सो मूठ लानेवालेका दाव आता है तौ वह सबका पैसा ले लेता है और दाव लगाने वालेका दाव आगया तौ उसे उतना ही देना पडता है इत्यादि नाना प्रकारकी शर्तें लगाकर जूआ खेलाजाता है।

जूआ समस्त दुराचारोंका राजा है और समस्त दुराचारोंको सिखानेवाला गुरु है। जो कोई जूआ खेलता है। और वह जीत जावे तौ धनवानका लडका होने पर भी चोरी करना झूठ बोलना वेईमानी करना अवश्य सीख जाता है यदि जूआमें जीत हो जाती है तौ वह जीता हुवा धन प्रायः वेश्यासेवन आदि अन्याय कार्योंमें ही खर्च हो जाता है। वेश्याके यहां जो लोग जाते हैं वे वहां शराव मांस भंग आदि खाना भी सीख जाते हैं जिससे न तौ वह दीनके रहते और न दुनियांके। जूआरीका कोई भी विश्वास नहिं करता उससे घरकी स्त्री तक अपना गहना छिपाती है जुआरीकी सिवाय घृणाके कहीं भी प्रतिष्ठा नहिं होती इस जूआके व्यसनसे ही पांडव नल सरीखे सत्यवादी प्रतापी राजागण सर्वस्व खोकर गली २ और जंगल २ मारे २ फिरते रहे। इस कारण जूआ वा जुआरीके पास खडा रहना भी अत्यन्त हानिकारक है।

इस जूएकी जड गंजफा तास चौरस सतरंज आदि खेलना है अर्थात् जिसमें हार और जीतका दाव आवे वे सब

जूएके बहन भाई हैं। ये खेल कभी दिल बहलानेको भी नहिं खेलना चाहिये।

——:o:——

५०. सत्यघोषकी कथा।

——:o:——

जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें सिंहपुर नगर है वहां राजा सिंहसेन थे और रानी रामदत्ता, पुरोहितका नाम श्रीभूति था वह अपने यज्ञोपवीतमें छुरी बांधकर सारे शहरमें फिरा करता था और मनुष्योंको विश्वास दिलाता था कि यदि मैं कभी भी असत्य बोलूंगा तो इस छुरीसे अपनी जिह्वा काट डालूंगा इस तरह छलसे उसने अपना नाम सत्यघोष रखवा लिया था और पुरवासी उसे सत्यघोष कहकर ही पुकारा करते थे। मनुष्योंका उस पर बड़ा विश्वास हो गया था इसलिये जो बाहर यात्रा आदिकेलिए जाता था अपना माल सत्यघोषके यहां ही रख जाता था इसलिये सत्यघोष की खूब बन गई थी वह चाहे जिसकी धरोहरका आधा या कुछ भी नहीं देता था और राजा उसकी कुछ भी न सुनते थे कारण कि राजाको भी यह विश्वास हो गया था कि सत्यघोष बिलकुल सच्चा है। एक दफे पद्मखंडपुरसे एक वणिक्पुत्र जिसका नाम समुद्रदत्त था सिंहपुर आया और वह लोगोंके मुंहसे सत्यघोषकी विश्वासवार्ता सुनकर उसके

पास गया और अपने बडे भारी कीमती पांच हारोंको उसके पास रखकर परदेश चला गया और वहां बहुत धन कमा कर लौट आया। रास्तेमें समुद्र पडता था इसलिये वह अपने मालको जहाजमें लदवा कर चल दिया। भाग्यसे जहाज समुद्रमें डूब गया और एक लकडीके सहारे जैसे तैसे समुद्रदत्त पार लग गया अब उसके पास खाने तकको भी न बचा था इसलिए वह सीधा वहांसे सिंहपुरकी तरफ चल दिया और सत्यघोषके पास आया परंतु सत्यघोष पहिलेसे ही जब वह आरहा था दूरसे देखकर समझ गया कि यह अपने हार उठाने आया है ऐसा जानकर पासके बैठे हुए मनुष्योंको विश्वास दिलानेकेलिए कि मेरे पास इसका कुछ भी नहीं है कहना शुरू कर दिया कि देखो! यह भिखारी आ रहा है और पागलसा मालूम पडता है यहां आकर मुझ से कुछ अवश्य मांगेगा कारण कि इसका जहाज समुद्रमें डूब गया है इसलिये वह विह्वलसा हो गया है, इतनेमें समुद्रदत्तने सत्यघोषके पास आकर नमस्कार किया और बोला—हे सत्यवक्ता! मैं परदेश धन कमाने गया था और वहांसे बहुत धन कमाकर लौट आया था परंतु भाग्यसे मेरा धनका जहाज समुद्रमें डूब गया है अतः कृपया मेरे पांचों हार दे दीजिए। उसके वचन सुनकर सत्यघोष हँस पडा और पासके बैठे हुए मनुष्योंसे बोला—देखो! मैंने तुमसे पहिले कह दिया था वह सत्य ही निकला न! उन सबोंने

कहा—आप ठीक समझ गए थे कि यह पागल हो गया है इसे घरसे निकाल दीजिये, सत्यघोषने पागल कहकर समुद्रदत्तको घरसे निकाल दिया। विचारा राजाके पास गया परंतु उसकी कौन सुने। हाय! राजाने भी वैसा ही किया अब विचारा निराश होकर शहरमें घूमने लगा, और सब जगह यही कहा करता था कि मेरे कीमती पांच हार सत्यघोष नहीं देता है। रात्रिको राजाके मकानके पीछे एक वृक्ष था उसपर बैठकर यही रटा करता था। जब इसतरह इसे छह माह हो गए तब एकदिन रामदत्ता रानीने महाराजसे कहा कि यह पागल नहीं है किंतु सच्चा ही मालूम पडता है आप सत्यघोषकी परीक्षा करके तो देखिए, कहीं यह ठग तो नहीं है? राजाने भी यह बात मान ली और रानीसे परीक्षा करनेको कहा। रानीने एक दिन सत्यघोषको अपने महलमें बुलाया परंतु वह कुछ देरीसे पहुंचा। रानीने कहा—आज तुम बडी देर कर आए हो—उसने कहा। मेरे घरपर कुछ अतिथि आ गए थे इसलिए जिमानेमें देरी हो गई। रानीने कहा—खैर! परंतु अभी आप दर्बारमें न जाइए। मेरा कुछ जी घबडा रहा है इसलिये चलो जुआ खेलें। राजा भी इतनेमें आगया और उसने भी कह दिया कि कुछ हानि नहीं, थोडी देरतक रानीके साथ जुआ खेलो। उस ब्राह्मणने खेलना शुरू कर दिया। रानी बडी ही निपुण थी इसलिए, उसने एक दासीको बुलाकर सत्यघोषकी स्त्रीके पास भेजा

और कह दिया कि तुम जाकर सत्यघोषकी स्त्रीसे कहना कि पुरोहितजी तो रानीके पास बैठे हैं और उनने वे पांचों हार उस पागलके मगाए हैं। दासी उसके घर पहुंची और सब वृत्तांत कह सुनाया। परन्तु उसने साफ नाईं कह दी कि—मैंने नहीं देखे। दूती चली आई और रानीसे जो कुछ उसने कहा था, कह दिया। रानीने पुरोहितजीकी अंगूठी जुआमें जीत ली थी इसलिए वह देकर भेजी और कहा कि शीघ्र हार ले आओ। अबकी दफे वह फिर गई परंतु फिर भी उसने न दिये। तीसरी दफे रानीने यज्ञोपवीत जीत लिया था और उसे देकर भेजा। दासी फिर गई और बोली तुम्हे विश्वास नहीं होता है। देखो! पुरोहितजीने अबके अपना जनेऊ विश्वासके लिये भेजा है और कहा है कि पांचोंहार दे देवे। उसने विश्वासमें आकर पांचों हार देदिये। दासी लेकर रानीके पास आई और हारको दे दिया। रानीने राजाको वे हार दिखा दिये परंतु राजाने उन पांचो हारोंको बहुतसे हारोंमें मिला दिया और उस समुद्रदत्तको बुलाकर कहा कि तुम अपने हारोंको इनमेंसे उठा लो। समुद्रदत्त तो अच्छी तरहसे अपने हारोंको जानता था इसलिए उसने उन हारोंमेंसे अपने पांचो हारोंको उठा लिया। अब राजाको बिल्कुल विश्वास हो गया कि सत्यघोष बड़ा ठग और धूर्त है राजाने सत्यघोषसे कहा कि तुमने यह काम किया है या नहीं? सत्यघोषने कहा—महाराज! ऐसा असाधु कर्म

मुझसे हो सकता है ? जब राजाने उसके ऐसे वचन सुने तो बहुत गुस्सा हुये और सत्यघोषके लिये तीन दंड नियत किये वे यह थे कि तीन गोबरकी थाली भरी हुई खाओ, या मल्लोंके तीन मुक्के (घूंसे) सहो या अपना सारा धन दे दो। सत्यघोषने गोबर खाना पसंद किया परंतु उससे वह थोड़ा भी नहीं खाया गया तो फिर उसने उसे छोडकर मल्लोंके तीन घूसे खाने पसंद किये परन्तु उनमें भी असक्त होकर अपना सारा धन दे दिया। सत्यघोष तीनों दंडोंको क्रमसे सहकर मरणको प्राप्त हो गया और अतिलोभसे मर कर राजाके ख़जानेमें अगधनामका सर्प हुआ, वहांसे मर-कर बहुत कालके लिये संसारी बनकर घूमने लगा। ठीक है, प्राणी झूठके प्रभावसे इस संसारमें सर्वत्र दुःख ही पाता है जैसा सत्यघोषने ऐहिक और पारलौकिक दुःखको प्राप्त किया।

———:o:———

५१. भूधरजैननीत्युपदेशसंग्रह छठा भाग।

———:o:———

होनहार दुर्निवार।

कवित्त मनहर।

कैसे कैसे बली भूप भूपर विख्यात भये,
अरिकुल कांपे नेक भौंहके विकारसौं।

लंघे गिरि सायर[1] दिवायरसे[2] दिपै जिन्हों,
कायर किये हैं भट कोटिन हुँकारसौं ॥
ऐसे महामानी मौत आये उन हार मानी,
क्योंहि उतरे न कभी मानके पहारसौं।
देवसों न हारे पुनि दानेसौं[3] न हारे और,
काहूसौं न हारे एक हारे होनहारसौं ॥ १ ॥

कालकी सामर्थ्य।

लोहमयी कोट कोई कोटनकी ओट करो,
कांगुरेन तोप रोपि राखो पट[4] भेरिकैं।
इंद्र चंद्र चौंकायत[5] चौकस है चौकी देहु,
चतुरंग चमूं[6] चहुं ओर रहो घेरिकैं ॥
तहां एक भोंवरा वनाय वीच वैठो पुनि,
वोलो मति कोउ जो वुलावै नाम टेरिकैं।
ऐसे परपंच पांति रखों क्यों न भांति भांति,
कैसेहू न छोरै जम देखो हम हेरिकैं ॥ २ ॥

मत्तगयंद सवैया।

अंतकसौं[7] न छुटै निहचैपर, मूरख जीव निरन्तर धूंजै[8]
चाहत है चितमें नित ही सुख, होय न लाभ मनोरथ पूजै ॥
तौ पन मूढ़ वँध्यो भय आस, वृथा वहु दुःख दवानल भूजै।
छोड विचच्छन ये जड लच्छन, धीरज धारो सुखी कि न हूजै ॥

---

१ सागर समुद्र। २ दिवाकर—सूर्य। ३ दानव—दैत्य। ४ किंवाड लगाकर। ५ चौकन्ने। ६ सेना। ७ यमराज—मृत्युसे। ८ कांपै—डरै

नसीबमें लिखा है सो ही मिलेगा।

जो धन लाभ लिलार लिख्यो, लघु दीरघ सुकृतके अनुसारै।
सो लहि है कछु फेर नहीं, मरु देशके ढेरं सुमेरु[10] सिंधारै॥
घाट न बाढ कहीं[11] वह होय, कहा कर आवत सोच विचारै।
कूप[12] किधौं भर सागर में नर, गागर मान मिलै जल सारै॥

आशारूपी नदी।

मनहर कवित्त।

मोहसे महान ऊंचे परवतसौं ढरि आई,
तिहूं जग भूतलमैं[13] ये ही विसतरी है।
बिविध मनोरथैंमें[14] भूरि जल भरी वहै,
तिसना तरंगनिसौं आकुलता धरी है॥
परै भ्रम भौंर जहां रागसे मगर तहां,
चिंता तट तुंग धर्म वृच्छ ढाय[15] ढरी है।
ऐसी यह आशा नाम नदी है अगाध ताकों,
धन्य साधु धीरज[16]तरंड चढि तरी है॥ ५॥

महामूढ वर्णन।

जीवन कितेक तामैं कहा वीति बाकी रह्यो,
तापै अंध कौन कौन करै हेर फेर्हा।

---

९ मारवाड़ धोरोंमें अर्थात् टीलोंमें। १० सोनेके सुमेर पर। ११ कम और ज्यादा। १२ कूएमें से भर ले चाहे समुद्रमेंसे भर ले तेरे घडे भर ही जल मिलेगा। १३ सर्वत्र। १४ मनोरथमय। १५ गिराकरके। १६ धीरज जहाज।

आपको चतुर जानै औरन को मूढ मानै,
सांझ होन आई है विचारत सवेर ही ॥
चामहीके चखनतैं चितवै सकल चाल,
उरसौं न चौंधै[1] कर राख्यो है अंधेरही ।
बाहै[2] वान[3] तानकै[4] अ तानकही ऐसो जप,
दीख है मसान थान हाडनके ढेरही ॥ ६ ॥
केती वार स्वान सिंघ सांवर[5] सियाल सांप,
सिंधुर[6] सारंग[7] सूसा[8] सूरी[9] उदरै परयो ।
केतीबार चील चमगादर चकोर चिरा[10],
चक्रवाक चातक चंडुल तन भी धरयो ॥
केतीवार कच्छ मच्छ मेंडक गिंडोला मीन,
शंख सीप कौडी है जलूका[11] जलमें तिरयो ।
कोउ कहै 'जाय रे जिनावर' तो बुरो मानै
यौं न मूढ जानै मैं अनेकवार है मरयो ॥ ७ ॥

दुष्टकथन छप्पय ।

करि गुण अंमृत पान, दोष विष विषम समप्पै[12] ।
वक्रचाल नहिं तजै, जुगल[13] जिह्वा मुख थप्पै ॥

---

१ देखै । २ चलावै । ३ वाण सर । ४ तानकर । ५ बारहसींगा । ६ हाथी । ७ मोर । ८ खर्गोस । ९ शूकरी । १० चिडिया । ११ जोंक । १२ समर्पण करै अर्थात उगलै । १३ सांपके दोजीभें होती है, दुष्ट द्वि जिह्वा अर्थात् चुगल होता है ।

तकै निरन्तर छिद्र, उदै परदीप न रुच्चै[1]।
विनकारण दुख करै, वैर विष कवहुं न मुंचै[3]॥
वर मौन मंत्रतैं होय वश, संगत कीये हान है।
बहु मिलत बान यातैं सही, दुर्जन सांप समान है॥ ८॥

विधातासे तर्क।

मनहर कवित्त।

सज्जन जो रचे तौ सुधारसमौं कौन काज,
दुष्ट जीव किये कालकूटसौं कहा रही।
दाता निरमापे फिर थापे क्यों कलपवृक्ष,
जाचक विचारे लघु तृणहूतैं हैं सही॥
इष्टके संयोगतैं न सीरो[4] घनसार कछु,
जगतको ख्याल इंद्रजालसम है वही।
ऐसी दोय दोय बात दीखैं विध एक ही सी,
काहेको वनाई मेरे धोखो मन है सही॥ ९॥

—:※:—

५२. तापसी चोरकी कथा।

—:※:—

वत्सदेशकी कौशाम्बी नगरीमें राजा सिंहरथ राज्य करते थे जिनकी स्त्रीका नाम विजया था। वहीं पर एक चोर रहता

---

१ दीपका उदय वा पराइ बढती। २ रुचती है। ३ छोडता है। ४ शीतल।

था जो छलसे तापसी होकर पृथ्वीको नहिं छूता था और अधपर सींकचेमें बैठकर दिनमें पंचाग्नि तपा करता था और रात्रिमें चोरी किया करता था। जब नगरमें बहुतसी चोरियां होने लगीं और नगरवासियोंको वहुत खटकने लगी तब उनने जाकर राजासे निवेदन किया कि महाराज हम बडे दुखित होने लगे हैं कारण कि हमारे बहुतसे माल चोरी जाने लगे हैं और चोरका पता नहिं लगता है। राजा ने यह सुनकर कोतवालको बुलाया और डाट लगाकर कहा कि नगरमें वहुतसी चोरियां होने लगी हैं इसलिये सात दिन के अंदरमें चोरको या अपने शिरको काट कर मेरे पास लाओ। कोतवाल यह सुनकर चल दिया और उसने ४-५ दिन खुब प्रयत्न किया परंतु चोरका पता कहीं भी न लगा। अब तो कोतवाल साहब बड़ी फिकरमें थे और शामके वक्त घर पर उदासीसे बैठे थे इतनेमें एक भूखा ब्राह्मण वहां आया और कोतवालसे भिक्षाकी प्रार्थना की। कोतवालने कहा— तुम्हे भिक्षाकी पड रही है मेरे तो प्राण बचना कठिन हैं। ब्राह्मणने सुनकर कहा—सो कैसे? कोतवालने पूर्वोक्त सब हाल कह सुनाया। तब उस भिक्षुकने कोतवालसे कहा कि क्या कोई यहां निस्पृही आदमी तो नहीं रहता है? उत्तरमें कोतवालने वही महात्मा साधु बतलाया। भिक्षुकने कहा—वही चोर होगा, इसमें किसी प्रकारका संदेह नहीं है। यद्यपि कोतवाल ने उसे बड़ा महात्मा और सच्चा ही साबित किया परन्तु

उसने एक न मानी और कहा पहिले मुझपर गुजरी हुई वार्ता सुनिये जिससे आपको पूरा निश्चय हो जायगा, वह यह है कि मेरी स्त्री अपनेको बड़ी पतिव्रता बतलाया करती थी, यहां तक कि वह अपने बच्चेको दूध पिलाते समय अपना स्तन नहीं छुवाती थी और कहा करती थी कि मेरे कुशील का त्याग है सिवा मेरे पतिके सब पुरुष परपति हैं इस लिये लड़केको कपडा ढक कर ऊपरवाला चूचक निकाल कर दूध पिला देती थी, परंतु रात्रिमें एक गोपालके साथ कुकर्म किया करती थी। यह एक दफे मैंने देख लिया इससे मैं बिलकुल उस स्त्रीसे विरक्त होकर तीर्थयात्राको चल दिया और मेरे पास जो सुवर्णकी बहुत शलाईयां थीं उनको एक लट्ठेमें भरकर साथ ले लिया और मैं तीर्थ-यात्रा करने लगा। भाग्यसे मुझे रास्तेमें एक बालक मिला और उसने मेरा साथ कर लिया, वह हमेशा मेरे साथ ही रहा करता था परंतु मैं उसका विश्वास जरा भी नहिं करता था और अपनी लाठीकी सदैव रक्षा करता रहता था। एक दिन हम दोनोंने रात हो जानेसे एक कुम्हारके घरमें बसेरा लिया और सुबह होने पर वहांसे चल दिये। थोडी दूर आए थे कि बालकने कहा—मुझसे बड़ा अपराध हो गया है कारण कि मेरी पगडीमें कुम्हारका नहीं दिया हुआ तिनका चला आया है इसलिए लौटकर उसीको देआऊं अन्यथा मुझे चोरीका पाप लगेगा। वह यह कह चल दिया और उसे

देकर लौट आया उस दिनसे मुझे उस पर बडा विश्वास हो गया था, एक दफे मैंने उसे भिक्षा मांगनेके लिये अकेला भेजा और कुत्ता आदिके ताडनेके लिए अपनी लाठी भी देदी वह उसे लेकर चला गया परन्तु फिर लौटकर नहीं आया मैंने बहुत तलास किया परंतु उसका पता न चला इसी तरह और भी उसने एक दो कथा सुनाई जिससे कोतवालको निश्चय हो गया और उस तापसीकी तलासमें ब्राह्मणको ही नियत किया। वह भिक्षुक ब्राह्मण वहांसे चलकर तापसीके आश्रममें पहुंचा और अंधा बनकर चिल्लाने लगा कि मैं अंधा हूं अब रात्रि हो गई है इसलिये घर नहि जा सकता अतः मुझे रात्रिमें यहां ठहर जाने दो यद्यपि तापसीके शिष्योंने बहांसे भगा दिया परतु वह वहीं गिर पडा और आगेको न बढा। तापसीके शिष्य चले गये और कहने लगे यह तो अंधा है अपने काममें कुछ बाधा नहीं डाल सकता इसलिये यहीं पडा रहने दो. उधर वह वहीं पडा रात्रिके सब कृत्योंको देखता रहा। यद्यपि तापसी, रात्रिमें यह अन्धा है या नहीं इस परीक्षाके लिये एक काठकी जलती हुई लकडी लाया परंतु उसने देखते हुए भी नहीं देखा और आंख मीचे पडा रहा। उधर वह तपस्वी रात्रिमें नगरसे बहुतसा धन चुराकर लाया और वहीं एक गुफामें बने हुये अंध कूपमें पटक कर उसी सीकचे में बैठ गया। यह सब देखकर भिक्षुक वहांसे चलकर कोतवालके पास आया

और सब उससे कहकर राजासे भी निवेदन किया। राजाने कोतवालको मारनेसे बचा दिया और उस तापसी चोरको उसी समय पकड़वा कर फांसी पर लटका दिया। वह आर्त्त ध्यानसे मर कर दुर्गतिमें गया। जो मनुष्य छलसे ऊपरी वेश धारण कर चोरी आदि कुकर्म करते हैं उनकी तापसी चोरकी तरह दुर्दशा होती है।

——:०:——

५३. श्रावकाचार सप्तम भाग।

——:०:——

भोगोपभोगपरिमाणव्रत।

इंद्रिय विषयोंका प्रतिदिन ही, कमकर राग घटा लेना।
है व्रत भोगोपभोग परिमित, इसकी ओर ध्यान देना॥
पंचेंद्रियके जिन विषयोंको, भोगि छोड देवें हैं—भोग।
जिन्हें भोगकर फिर भी भोगे, मित्रो वे ही हैं उपभोग॥

रागादि भावोंको घटानेके लिये परिग्रह परिमाण व्रत की मर्यादामें भी प्रयोजनभूत इंद्रियोंके विषयोंका प्रति दिन परिमाण (संख्या) कर लेना (रखलेना) सो भोगोपभोग परिमाण व्रत है। भोजन वस्त्रादिक पंचेंद्रियके जो विषय एक ही बार भोगनेमें आवैं उनको तो भोग कहते हैं और जो वस्त्रादिक विषय वारवार भोगनेमें आवैं उनको उपभोग कहते हैं॥ ६८॥

भोगोपभोग परिमाणमें कौन २ सी वस्तु त्याज्य है ?

त्रस जीवों की हिंसा नहिं हो, होने पावै नहीं प्रमाद ।
इसके लिये सर्वथा त्यागो, मास मद्य मधु छोड विषाद ॥
अदरख निंबपुष्प बहुबीजक, मक्खन मूल आदि सारी ।
तजो सचित चीजें जिनमें हों, थोडा फल हिंसा भारी ॥

त्रस जीवोंकी हिंसाका निवारण करनेके लिये मधु, मांस, और प्रमाद दूर करनेके लिये मद्य छोडने योग्य है इसके सिवाय फल थोडा हिंसा अधिक होनेके कारण सचित्त (कच्चे) अदरख, मूला, गाजर, मक्खन, नीमके फूल, केतकीके फूल, इत्यादि वस्तुएं भी छोड देना चाहिये ॥

वास्तविक व्रतका लक्षण ।

जो अनिष्ट है, सत्पुरुषोंके,—सेवनयोग्य नहीं जो है ।
योग्यविषयसे विरक्त होकर, तज देना जो व्रत सो है ॥
भोग और उपभोग त्यागके, बतलाये यम 'नियम' उपाय।
अमुक समयतक त्याग नियम है, जीवन भरका 'यम' कहलाय ॥

जो शरीरको हानिकारक है अथवा उत्तम कुलके सेवन योग्य नहीं वह तो त्यागने योग्य है ही, परंतु योग्यविषयोंसे विरक्त होकर त्याग करना वही व्रत होता है। यह त्याग यम नियमके भेदसे दो प्रकारका होता है। कुछ कालकी मर्यादा करके त्यागना सो तो नियम है और यावज्जीव त्याग देना सो यम कहलाता है ॥ ७० ॥

नियम करनेकी विधि।

भोजन वाहन शयन स्नान, रुचि, इत्र पान कुंकुम लेपन।
गीत वाद्य संगीत काम रति, मालाभूषण और वसन॥
इन्हें रात, दिन, पक्ष मास या, वर्ष आदि तक देना त्याग।
कहलाता है 'नियम' और 'यम', आजीवन इनका परित्याग॥

भोजन, सवारी, शयन, स्नान, कुंकुमादि लेपन, इत्र-पान, गीत वाद्य संगीत, कामरति, माला भूषण आदि विषयोंका घडी, पहर, एक दिन, एक रात, एक पक्ष, एक मास, दो मास, छह मास, वर्ष आदि तककी मर्यादा करके त्याग देना सो नियम है और यावज्जीवन किसी विषयका त्याग देना सो यम है॥ ७१॥

भोगोपभोगव्रतके पांच अतिचार।

विषय विषोंका आदर करना, भुक्त विषयको करना याद।
वर्तमानके विषयोंमें भी, रचे पचे रहना अविषाद॥
आगामी विषयोंमें रखना, तृष्णा या लालसा अपार।
बिन भोगे विषयोंका अनुभव, करना, ये भोगातीचार॥

विषयरूपी विषोंमें आदर रखना, पूर्वकालमें भोगे हुये विषयोंका स्मरण रखना या करना, वर्त्तमानके विषय भोगने में अतिशय लालसा रखना, भविष्यतमें विषयप्राप्तिकी अतिशय तृष्णा रखना, विषय नहिं भोगते हुये भी विषय भोगता हूं ऐसा अनुभव करना ये पांच भोगोपभोग परिमाण व्रतके अतिचार हैं॥ ७२॥

५४. वणिक्पुत्री नीलीकी कथा।

—:※:—

लाटदेशके भृगुकच्छ नगरमें राजा वसुपाल राज्य करते थे वहीं वणिक् जिनदत्त निवास करते थे उनकी स्त्रीका नाम जिनदत्ता और पुत्रीका नीली था। नीली बडी सुंदर और रूपवती थी, उसी नगरमें समुद्रदत्त सेठ भी रहते थे। जिनकी स्त्रीका नाम सागरदत्ता और पुत्रका नाम सागरदत्त था। एक समय बडी भारी पूजामें कायोत्सर्ग स्थित और संपूर्ण आभरणोंसे भूषित नीलीको सागरदत्तने देख लिया और देखते ही वह विचारने लगा कि यह तो कोई देवता खडी हुई मालूम पडती है परंतु जब उसने अपने मित्र प्रियदत्तसे पूछा तो उसने कहा—यह देवता नहीं है किंतु जिनदत्त सेठकी यह पुत्री नीली है। इसके रूपको तो सागरदत्त पहिले ही देख चुका था। इसलिए वह इतना मोहित हो गया कि उसे संसारके सब पदार्थ बुरे मालूम पडने लगे इसकी नजरमें नीली ही नीली दिखाई देती थी और इसी चिंतामें वह बडा दुवला पतला हो गया था। उसकी वांछा यही रहती थी कि मैं कैसे इसे पाऊं? कुछ दिन बाद सागरदत्तके पिता समुद्रदत्तको जब यह खबर पडी तो उसने कहा कि यद्यपि जिनदत्त जैनीके सिवाय किसीको अपनी पुत्री न देगा। परंतु मैं ऐसा उपाय करता हूं जिसमें

वह पुत्री तुम्हीको मिल सके। उसने ऊपरी जैनी बनना शुरू किया और इतना दिखावटी जैनी वन गया कि सब लोग उसे सच्चा जैनी कहने लगे। अब क्या था यह बात जिनदत्त तक भी पहुंची और इसलिये उसने समुद्रदत्तके कहनेपर अपनी लडकीका विवाह सागरदत्तके साथ कर दिया। विवाह करते देरी न हुई थी कि समुद्रदत्तने अपना बनावटी वेष बदल दिया और पूर्वकी तरह बौद्धधर्म पालने लगा और नीलीका पिताके यहा जाना बिल्कुल बंद कर दिया। जब यह खबर जिनदत्तने सुनी तो अपने मनमें बहुत पछताया और विचारने लगा कि इससे नीली का मरण होता तो भी अच्छा था परंतु अब जिनदत्तके सब विचार व्यर्थ ही थे। परंतु नीली बडी धर्मात्मा थी इस लिए वह वहां पातिव्रत्य धर्मसे रहती हुई अपने कालको धर्ममें विताने लगी और उसने किसी तरह भी बौद्धधर्म धारण न किया। जब घरके सब आदमी नीलीको बौद्धधर्मकी तरफ लगानेमें असमर्थ हो गए तब समुद्रदत्तने बौद्धसाधुवोंका व अपना प्रयत्न शायद सफल होजाय यह समझकर उन साधुवोंका एक दिन निमंत्रण कर दिया और नीलीसे रसोई बनानेको कहा। नीलीने श्वसुरकी आज्ञाको मानकर नाना प्रकारके मिष्टान्न बनाना शुरू कर दिया। जब साधु जीमनेको आए तब धीरेसे नीली साधुका एक जूता उठा लाई और छोटे २ टुकडे करके उसी भोजनमें मिलाकर सबको खिला दिया। जब

साधु अपने स्थानको जाने लगे तो एक साधुका जूता नहीं। बहुत तलास करने पर नीलीने कहा-महाराज आप तो निमित्तज्ञानी हैं अपने शास्त्रसे पता लगा लीजिए। मेरे श्वसुर तो जिस धर्मपर मुझे लाना चाहते हैं इसकी बडी प्रशंसा करते हैं परंतु आप तो अपनी जूतीको पेटमें रक्खे हुए भी पता नहीं लगा सक्ते। नीलीके ऐसे वचन सुनते ही साधु बहुत घबड़ाए और इस बातकी परीक्षाके लिये एक साधुने वमन कर दिया। नीलीने जो कहा था वह बिलकुल सत्य निकला उस वमनमें कई छोटे २ टुकडे जूतीके दिखाई देते थे। विचारे साधु बहुत लज्जित होकर अपने स्थानको चले गए, किंतु घरके सब लोग नीली पर बहुत कुपित हुए और कहने लगे-तू बडी पापिनी है। सागरदत्तकी बहिनने तो यहांतक किया कि इसे कुशीलका दोष लगाकर सब जगह बदनाम कर दिया। विचारी नीली इस दोषका छुटकारा पानेकेलिए मंदिरमें गई और भगवानके सामने कायोत्सर्गसे स्थिर होकर कहने लगी कि जबतक मेरा यह अपवाद न हटेगा अन्न जलका सर्वथा त्याग है, इसके महा तपसे नगरदेवता क्षुभित होकर रात्रिको नीलीके पास आया और कहने लगा- हे देवि! इसतरह आप अपने प्राणोंका त्याग न कीजिये। मैं यहांके राजा व मंत्रियोंको स्वप्न द्वारा जताए देता हूं कि-नगरके दरवाजोंके किवाड किसी शीलव्रता स्त्रीके अंगूठेसे खुलेंगे अन्यथा नहीं, ऐसा कहकर वह देव चला गया और

नगरके सब दरवाजोंको कीलकर राजा व मंत्रियोंको पूर्वोक्त स्वप्ना दे दिया। सुबह होते ही मनुष्योंने जब यह देखा तो बड़े अचंभेमें पड गए और सब नगरवासी दुखित होने लगे, कारण कि भीतरके मनुष्य बाहर नहीं जा सकते थे, और न बाहरके भीतर। जब राजाने यह खबर सुनी तो रात्रिका स्वप्न स्मरण कर नगरकी सब स्त्रियोंको बुलाकर उनका पादस्पर्श कराना शुरू कर दिया परन्तु किसीसे किवाड़ न खुले। तब राजाने जैन मंदिरसे नीलीको बुलाया और अपना पद किवाडोंसे लगानेको कहा। नीलीने जैसे ही अपना पैर लगाया कि किवाड शीघ्र खुल गये। अब क्या था? चारों तरफसे प्रशंसाकी आवाज गूंज उठी और राजाने उसका पातिव्रत्य देखकर पूजा की। धन्य है जिस शील व्रतके माहात्म्यसे स्त्रियां भी राजाओंके द्वारा पूज्य हो जाती हैं यदि मनुष्य इससे भूषित हों, तो न जाने उन्हें किस अलौकिक सुखकी प्राप्ति न हो?

—:०:—

५५. स्वदेशोन्नति।

—:०:—

अय विद्यार्थियो! जरा इयोरूपनिवासियों वा जापानियोंकी तरफ नजर उठाकर देखो कि उन्होंने थोडेही दिनोंमें अपने देशकी कैसी उन्नति कर डाली है और दिनों दिन करते जाते हैं। तुमारे बुजुर्गोंने कहा है कि—

"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी"

अर्थात् माता और अपनी जन्मभूमि स्वर्गसे भी श्रेष्ठ (अधिक) सुखदायक है सो तुमने तौ अपने वडोंके इन अमूल्य वचनोंका कुछ भी आदर व पालन नहिं किया और विदेशियोंने तुमारे वडोंके इस वचनको सत्य करके दिखला दिया। क्योंकि वर्तमानमें क्या व्यापार, क्या शिल्प, क्या नीति, क्या राज्य, क्या शोभा, क्या मान, क्या धन जिस विषयमें देखो उसी विषयमें अंगरेजोंको सबसे उन्नत वढा चढा देखते हो सो क्या उनके शरीरमें हाथ पाव नाक कान तुमारे शरीरसें दुगणे चौगुणे हैं, क्या विधाताने (कर्मने) उन्हीको विद्या बुद्धि वा ज्ञान दिया है। तुमारेमें क्या विद्या बुद्धिका अभाव है? क्या तुम भी उनकी देखा देखी उपाय करो तौ किसी वातमें कम हो, जो उन्नत नहिं हो सकते? परन्तु खेद यही है कि तुमने प्रमाद और मूर्खताके कारण हिम्मत और परिश्रम करना छोड दिया है!

अरे भाइयो! जरा अंगरेजोंके प्राचीन इतिहासको तो देखो कि वे लोग दोसौ वर्ष पहले कैसे थे? आलु मांसके खाने वाले निरे जंगली असभ्य थे कि नहीं? फिर तुमारे हृदयकी फूट गई कि उन्होंने तुमारे देखते किस नीति और चतुराईके साथ तुम लोगोंको दीन गुलाम बनाते हुए पृथ्वी भरमें अपना प्रभाव, धनमान प्रतिष्ठाका विस्तार किया और अपनी जन्मभूमिको स्वर्गसे भी श्रेष्ठ बना लिया।

तुम्हारी और तुमारे देशकी उन्नति हो तो कैसे हो? क्योंकि तुम तो अपने बाप दादोंकी यानी महर्षियोंकी बताई हुई प्राचीन विद्या, नीति चतुराईको छोडकर समस्त आचार व्यवहार नष्ट करनेवाली थोडीसी अंगरेजी विद्या पढकर अपने पूज्य ऋषियोंके (बापदादोंके) चलाये हुये सर्वोत्तम रीति रिवाजोंको (धर्मको) जडमूलसे हटाकर काले काले कोट बूट पतलून पहन कर रीछोंकी सी सुरत बना लेना, बूट पहन कर कुरसी पर बैठकर टेबल पर भोजन करना, विवाह शादी परदा जातिभेदको मिटाकर विधवाविवाह आदिक सत्यानासी विचारोंका प्रचार करना, शूद्रोंके साथ भोजन करना, बेटी व्यवहार करना आदि कुरीतियोंके प्रचारमें लग गये। अपने पूज्य ऋषि मुनियोंके वचनों और ग्रन्थोंका खंडन करके अंगरेजोंके बताये हुये कुरीतियोंकी ही नकल करनेमें देशोन्नति व जात्युन्नति समझने लगे हो।

प्यारे लडको! जरा हृदयके नेत्र खोल कर अपने बाप दादोंके लक्षावधि उपदेशी ग्रंथोंके वचनोंमेंसे कुछ वचनोंका तो पालन करो उन्होंने तुमारे लिये ही उपदेश देनेवाले लाखों ग्रंथ बनाये थे और अब भी वे रक्खे हुये हैं उनका अनादर वा खंडन मत करो, एकदम कृतघ्नी मूर्ख न बनो बहुत नहिं मानो तो न सही, किंतु नीचे लिखे एक वाक्यको तो आज अवश्य ही मान लो। देखो—इस वाक्यमें तुमारे लिये कैसा उत्तम उपदेश दिया है—

स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिं ।
परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते ॥ १ ॥

अर्थात् दुनियांमें वही मनुष्य पैदा हुआ है कि जिसके पैदा होनेसे यानी जिसके उपायोंसे उसके वंश और जाति की भले प्रकार उन्नति हुई देखे तो इस भ्रमणारूप (चक्रमय) संसारमें कौन नहिं जन्म लेता और कौन नहीं मरता ?

एक वाक्य और भी सुनो—

दाने तपसि शौर्ये च यस्य न प्रथितं यशः ।
विद्यायामर्थलाभे च मातुरुच्चार एव सः ॥ २ ॥

अर्थात् जिस मनुष्यका जगतमें चार प्रकारके दानमें द्वादश प्रकारके तपः आचरण करनेमें, शूरवीरतामें, विद्या और धन कमानेमें यश नहिं फैला वह मनुष्य अपनी माताका मूत्र वा विष्ठा ही है। अपनी माताका सुपूत बेटा तो वही हो सकता है जब कि उपर्युक्त गुणोंमें अपना यश फैलावै ।

बस ! इन दो वाक्योंको मानकर अपने देशके लिये अपनी जाति और धर्मके लिये जो कुछ कर सको यथाशक्ति तन मन धनसे कटिबद्ध होकर तुम्हें करना चाहिये ।

———:o:———

५६. श्रावकाचार अष्टम भाग।

देशावकाशिक शिक्षाव्रत।

पहिला है देशावकाशि पुनि, सामायिक, प्रोषध उपवास।
वैयावृत्य और ये चारो, शिक्षा है सुखका आवास॥
दिग्व्रतका लंवा चौडा स्थल, काल भेदसे कम करना।
प्रतिदिन व्रत देशावकाशि सो, गृही जनोंका सुख भरना॥

देशावकाशिक, सामायिक, प्रोषधोपवास, और वैयावृत्य ये चार शिक्षाव्रत हैं। दिग्व्रतमें परिमाण किये हुये विशाल देशका, कालके विभागसे प्रतिदिन त्याग करना सो गृहस्थियोंका देशावकाशिक नामा शिक्षाव्रत है॥ ७३॥

देशावकाशिकके क्षेत्र और कालकी मर्यादा करनेका नियम।

अमुक गेह तक, अमुक गली तक, अमुक गांवतक जाऊंगा।
अमुक खेतसे अमुक नदीसे, आगे पग न बढाऊंगा॥
एक वर्ष छह मास मास या, पखवाडा या दिन दो चार।
सीमा काल भेद सो श्रावक, इस व्रतको लेते हैं धार॥

इस देशावकाशिक व्रतको इस प्रकार धारण करते हैं कि दशों दिशाओंमें अमुक घर, अमुक गली, अमुक गांव अमुक खेत वा अमुक नदी तक जाऊंगा इससे आगे नहिं जाऊंगा इस प्रकारकी मर्यादा एक वर्ष, छहमास, च्यारमास दो मास, एक मास, एक पक्ष वा एक दो चार दिन तककी करना चाहिये॥ ७४॥

इस व्रतके पालनेका फल और अतिचार ।

स्थूल सूक्ष्म पाँचों पापोंका, हो जानेसे पूरा त्याग ।
सीमाके वाहर सध जाते, इस व्रतसे सुमहाव्रत आग ॥
हैं अतिचार पांच इस व्रतके, मंगवाना प्रेषण करना ।
रूप दिखाय इशारा करना, चीज फेंकना ध्वनि करना ॥

इस देशावकाशिक व्रतकी मर्यादाओंसे वाहर पांचों पापोंका स्थूल सूक्ष्म दोनों प्रकार त्याग हो जानेसे श्रावकके अणुव्रत महाव्रत हो जाते हैं ॥

मर्यादाके वाहर चिट्ठी वस्तु या आदमीको भेजना, मगाना, या शब्द करना, अपना रूप दिखाकर समस्या (इशारा) करना, या कंकर पत्थर फेकना ये पांच देशावकाशिक शिक्षा व्रतके अतीचार हैं ॥ ७६ ॥

सामायिक शिक्षाव्रत ।

पूर्ण रीतिसे पंच पापका, परित्याग करना सज्ञान ।
मर्यादाके भीतर वाहर, अमुक समय धर समता ध्यान ॥
है यह सामायिक शिक्षाव्रत, अणुव्रतोंका उपकारक ।
विधिसे अनलस सावधान हो, बनो सदा इसके धारक ॥

मन वचन काय कृत कारित अनुमोदना करके मर्यादा और मर्यादासे बाहर भी किसी नियत समय पर्यंत पांच पापोंके सर्वथा त्याग करके समता भावसे वैठकर ध्यान करनेको सामयिक कहते हैं ॥ ७६ ॥

सामायिकमें बैठनेकी विधि।

जब तक चोटी मूठी कपडा, बंधा रहैगा, मैं तब तक।
सामायिक निश्चल साधुंगा, यों विचार कर निश्चय तक॥
पद्मासन कर भली भांतिसे, अथवा कायोत्सर्ग जु धर।
दोय चार या छह घटिका तक, सामायिक तू धारन कर॥

सामायिक करनेवाला श्रावक–अपने शिरके बाल कपडा मूठी बांधकर दो या चार वा छह घडी तक पद्मासन वा कायोत्सर्ग धारण करके सामायिकमें स्थिर होकर तिष्ठै॥ ७७॥

सामायिक करने योग्य स्थान।

घर हो वन हो चैत्यालय हो, कुछ भी हो निरुपद्रव हो।
हो एकांत शांत अति सुंदर, परम रम्य औ शुचितर हो॥
ऐसे स्थलमें साम्य भावसे, तनको मनको निश्चलकर।
एक भुक्त उपवास दिवस या, प्रति दिन ही सामायिक कर॥

घर वन चैत्यालय धर्मशाला आदि जहांपर भी एकांत और पवित्र स्थान हो उसी जगहपर साम्यभावसे तन मनको निश्चल करके एकाशन या उपवासके दिन वा प्रति दिन ही सामायिक करना चाहिये॥ ७८॥

सामायिक करनेका फल।

सामायिकके समय गृही, आरंभ परिग्रह तजते हैं।
पहिनाये हों वसन जिसे, ऐसे मुनिसे वे दिखते हैं॥

साम्य भाव थिर रख मौनी रह, सब उपसर्ग उठाते हैं।
गरमी सरदी मशक डांसके, परिषह सब सह जाते हैं ७८

सामायिकमें बैठनेके समयमें आरंभ रहित समस्त पापों का त्याग हो जानेसे और गर्मी सर्दी डांस मच्छरादिके उपसर्ग सहनेसे गृहस्थ, जिस मुनिपर कपडा डाल दिया गया हो ऐसे मुनिकी तरह साक्षात् मुनि हो जाता है। इस कारण प्रति दिन ही मुनिधर्मकी शिक्षा देनेवाली सामायिक करना चाहिये ॥ ७९ ॥

सामायिक करते समय क्या विचारना चाहिये?

अशुभरूप अशरण अनित्य यह, पररूप संसार महान।
अतिशय दुःख पूर्ण है तौ भी, बना हुआ है मेरा स्थान॥
इससे बिलकुल उलटा सुखमय, मोक्षधाम शाश्वत सत्तम।
सामायिकके समय भव्यजन, ध्यान धरो ऐसा उत्तम ८०

जिसमें मैं निवास करता हूं ऐसा यह संसार अशरण रूप अशुभरूप अनित्य दुःखमय और पररूप है। मोक्ष स्थान इससे सर्वथा विपरीत है इत्यादि प्रकारसे सामायिक में उत्तम ध्यान करना चाहिये ॥ ८० ॥

सामायिक शिक्षाव्रतके पंचातीचार।

अपने साम्यभावको तजकर, करदेना चंचल तनको।
वाणीको चंचल करदेना, करदेना चंचल मनको॥
सामायिकमें करै अनादर, काल पाठ रखना नहि याद।
ये अतिचार पांच इस व्रतके, कहे गये हैं बिना विवाद॥

मनको चलायमान करना, तनको चलायमान करना, वचन चलायमान करना, सामायिकमें अनादर करना, और सामायिकका समय वा पाठोंको भूल जाना ये पांच सामायिक शिक्षाव्रतके अतिचार हैं ॥ ८१ ॥

—:०:—

५७. यमदंड कोतवालकी कथा।

—:०:—

अहीर देशके नासिक्य नगरमें कनकरथ राजा राज्य करते थे, राजाके कोतवालका नाम यमदंड था जिसकी माताका नाम वसुंधरी था। जो छोटेपनमें विधवा हो जानेसे व्यभिचारिणी हो गई थी। एक समय वह वसुंधरा अपनी बहूसे कुछ गहने लेकर जारके पास जा रही थी उस समय अंधेरी रात खूब हो ही चुकी थी इसलिए जैसे यह घरसे कुछ दूर ही पहुंची थी कि उधरसे यमदंड कोतवाल चौकी लगा रहा था उसने इसे जाते देख लिया और कोई व्यभिचारिणी समझ कर उसके पीछे हो लिया। जब वसुंधरा अपने नियत स्थानपर पहुंच गई तो यह भी वहीं पहुंच गया और वसुंधराने इसे अपना जार समझकर, और इसने व्यभिचारिणी समझकर परस्पर अपनी कामाग्निको शांत किया, और उन गहनोंको यमदंडको देदिया, उसने आकर अपनी स्त्रीको सोंप दिये, स्त्रीने गहनोंको लेकर अपने पति यमदंडसे

कहा कि ये गहने तो मैंने अपनी सासुको दिये थे आपपर कैसे आगये ? यह सुन यमदंड विचारने लगा कि जिसके साथ मैंने भोग किया है वह मेरी माता थी, परन्तु उसे तो ऐसा चसका लग गया कि माताके साथ ही उसी स्थानपर नित्य जाकर कुकर्म करने लगा जब उसकी स्त्रीको इसका पूरा पता चल गया तो उसने एक दफे बातचीतमें बागकी मालिनसे कह दिया कि मेरा पति खास अपनी मातासे भोग करता है, मालिनने जाकर राजा कनकरथकी रानी कनकमालासे कह दिया। कनकमालाने यह सब अपने स्वामी कनकरथसे कह सुनाया परन्तु राजाने इस बातकी ठीक खोज करनेके लिये अपने दूतोंको भेजा और उनने वहां जाकर वैसा ही देखा जैसा राजाने सुन रक्खा था, आकर राजासे निवेदन कर दिया। महाराजने यमदंडको बुलाकर खूब सजादी जिससे वह मरकर नरक गतिको गया। ठीक है जो मनुष्य अपनी स्त्रीको छोडकर दूसरोंके साथ भोग करते हैं वे पापका संचय करके दुःख पाते हैं परंतु जो अपनी माताको ही स्त्री समझ बैठते हैं उनकी तो कहानी ही क्या है ?

———:*:———

५८. मद्यपान निषेध।

मद्य (मदिरा शराब) एक अतिशय अपवित्र और दुर्गंधमय पदार्थ होता है। क्योंकि वेरीके पेडकी जड, महुआ

पुराना गुड आदि, जमीनमें गडे हुये मटकोंमें पानीके साथ डालकर महीनों तक सडाये जाते हैं। जब उसमें सर्दीके प्रभावसे सडकर असंख्य कीडे पड जाते हैं तब उन सब कीडों और बेरीके जड वगेरहका अर्क भट्टी चढाकर यंत्रके द्वारा निकाल लिया जाता है फिर ठंडा करके बोतलोंमें भर भर कर उसे बेचते हैं। जब वह मद्य ठंडा हो जाता है तबसे उसमें असंख्य सूक्ष्म कीडे पडने शुरू हो जाते हैं। यदि तुम सूक्ष्मदर्शक यंत्रसे (माइक्रोस्कोप से) देखोगे तो शराब सर्वथा कीडोंकी राशि (खान) समझोगे। इस प्रकार असंख्य जीवोंसे भरी हुई दुर्गंधमय मदिरा को लोग पीते हैं उनको इन सब जीवोंकी हिंसाका महा पाप लगता है और उनको मद्यपी, शराबी कहते हैं। मदिरामें नशा बहुत होता है जिसके पीनेसें मनुष्य अपनी सब शुध बुध बिसर जाता है और उसको स्वपरका वा हिताहित का ज्ञान न होनेसे वह धर्मसे च्युत होकर हिंसा चोरी झूठ कुशीलसेवनादि पापोंमें लग जाता है। सदाचरणको बिलकुल भूल जाता है फिर वह मानसिक शक्तियोंके नष्ट होनेसे प्रतिदिनके कार्य करनेमें भी असमर्थ हो रोगी हो जाता है। जिससे दिनोंदिन उसकी आयु घटती जाती है असदाचारी होनेसे दुनियांमें उसका विश्वास व मान मर्यादा सब घट जाती है। तब उसके पास कोई भी भला मनुष्य नहिं आता। जो वह शराबी धनाढ्य होता है तौ ठग लोग

उसके प्यारे बन जाते हैं और उसे वेश्यासेवनादि कुकार्यों में लगाकर सब धन नष्ट कर देते हैं। अंतमें दरिद्र दुःखी होकर कुमरणसे मरता है।

मनुष्योंको मदिरा पीनेका अभ्यास इस तरह पड जाता है कि मनुष्य प्रायः खोटी संगतिमें रहनेसे अनेक कुकार्य करने लगता है। उस समय शराबका पीना भी उन खोटी इच्छाओंके साधनेका कारण हो जाता है। क्योंकि मदिरा बडी गर्म होती है इसको पहिलेही पहिले पीनेपर उसकी गर्मीसे खून पतला हो जाता है और उसकी गति बढ़ जाती है जिससे नाडी बलवान हो जानेसे कुछ कालकेलिए शरीरकी शिथिलता नष्ट हो जाती है इस कारण उसको लाभदायक समझ रोज २ पीने लग जाते हैं। परंतु थोडी पीनेसे वह नशा तथा वह गर्मी नहिं आती, जैसी कि पहिले दिन मालूम दीथी। इस कारण दिनोंदिन मात्रा बढाने लगते हैं जिनको नित्य और बहुत २ पीनेका अभ्यास पड जाता है उनको क्रमसे लकुआ (अर्द्धांग वायु) मंदाग्नि, बात, मूत्र रोग, कम्प वायु वगेरह अनेक रोग पैदा होने लगते हैं। तथा थोडे ही दिनोंमें शरीर काठकी लकडीके माफक सूख जाता है और शीघ्रही कालके गालमें चला जाता है। कोई २ बहुतसा मद्य पीनेवाले हमेशहके लिये पागल बनकर अपने जीवनका सत्यानाश कर डालते हैं। जिस प्रकार मद्य शरीरको हानिकारक होती है इसी प्रकार गांजा चरस, चंडू भांग पोस्ता

अफीम बीड़ी चुर्ट चाय वगैरह भी बहुत हानिकारक हैं। जब ठीक समय पर इनमेंसे कोई नशा नहीं मिलता है तो बड़ी हानि करता है और उसके विना कोई भी काम नहिं कर सकते। इस कारण इन सब नसोंमेंसे तुम किसी प्रकार का भी नसा करना नहिं सीखना वल्कि जो लोग मद्य चरस भांग गांजा चंडू वगैरह पीते हैं उनकी संगतिमें भी नहिं बैठना अगर बैठोगे तो तुम भी सीख जाओगे।

लावनी।

हे हे भारतसंतान न मद विष खाओ।
है हाथ जोडकर अरज ध्यानमें लाओ ॥ टेक ॥
कत[1] मनुष्य खाय कर नसे नसहिं दिनराती।
कत कुल कलपत हैं कूट कूट कर छाती ॥
कत शत कुलवाला विन प्रीतम दुख पाती।
बिधवा बन बन नयननसे नीर वहाती ॥
इस विपतासे अब सबके प्रान बचाओ।
है हाथ जोडकर अरज ध्यानमें लाओ ॥
हे हे भारत संतान न मद विष खाओ। हे० हा० ॥ १ ॥
कत बालक विन पितु हाय महा दुख पावें।
कत जननिपुत्र विन हाहाकर अकुलावें ॥
जब लाख लाख रुपयनके नसे विकावें।

---

१ कितनेही।

फिर क्यों न दरिद दुख मुख अपनो दिखरावें ॥
है मादक अग्नि समान अरजि जि न खाओ। है० हा० ॥ २॥
कत युवा मादकन खाय खाय दुख पाते।
हो रोग ग्रसित फिर बिना मौत मरजाते ॥
वे वैद्य दुष्ट जो इन्हें श्रेष्ठ बतलाते।
जगके जीवनका वृथा नाश करवाते ॥
भैया ऐसनको दूरहितें शिर नावो। है० हा० ॥ ३ ॥
सब इक तन इकमन एक प्राण हो भाई।
इक साथ कहैं द्वारन द्वारन पै जाई ॥
" यह नसा बुरा है सदा अधिक दुखदाई।
तिह कारण इसको तजहु भजहु जिनराई ॥"
सब मिलकर सुखतैं धर्म ध्वजा फहरावो। है० हा० ॥ ४ ॥
इस मेरी अरज पर जरा ध्यान तुम धरना।
विद्या रस तजकर जहर पान मत करना ॥
इन नसेबाजोंकी कहीं जगतमें दर ना
है सदा एकसा इनका जीना मरना।
तुम जान बूझकर मूरख मत कहलावो। है० हा० ॥ ५ ॥
विद्याके बराबर नसा कोई नहिं नीका।
इसके आगे हैं और नसा सब फीका ॥
यातैं विद्या पढो भरम तज जीका।
सब चमत्कार है जगमें विद्याहीका ॥
इन नसे बाजोंको भली भांति समझावो। है० हा० ॥ ६ ॥

हे नसेबाजो ! क्यों वृथा उमर खोते हो ?
खा खाके नसा वदनाम मुफ्त होते हो ॥
बच्चोंके लिये क्यों विष वृक्षहिं वोते हो।
अब भी समझो किस गफलतमें सोते हो ॥
भारतवासिनको शुद्ध पंथ दिखरावो। हे० हा० ॥ ७ ॥

—:०:—

५९. जयकुमारकी कथा।

—:०:—

हस्तिनापुरमें सोमप्रभ राजा राज्य करते थे जिनके पुत्रका नाम जय था। जयकुमार बड़ा संतोषी और व्रती था। इनकी स्त्रीका नाम सुलोचना था। एक समय किसी विद्याधर को विमानमें बैठेहुए जाते देखकर इन दोनोंको पूर्व विद्याओंका स्मरण हो आया। जिससे उन्हें वे विद्यायें सिद्ध हो गईं। और वे दोनों उन विद्याओंका पाकर मेरु आदि पर्वतोंकी वंदना करके कैलाश पर्वतपर भरतके बनवाए हुए चौवीस तीर्थकरोंके मंदिरोंकी वंदनाके लिए जा पहुंचे। इतनेमें ही सौधर्म स्वर्गमें इंद्र अपनी सभाके समक्ष जयकुमारके व्रत (परिग्रह परिमाण) की प्रशंसा करने लगे। रतिप्रभदेव भी वहीं बैठा था। वह इन्द्रके द्वारा जयकुमार की तारीफ सुनकर उसकी परीक्षाके लिये कैलाशपर आया और साथमें चार सखियोंको लेकर स्त्रीका रूप धारण करके

जयकुमारके पास गया और बोला—हे जयकुमार ! सुलोचना के स्वयंवरमें जिसने आपके साथ बडी लडाईकी थी, उस नाभि विद्याधरकी मैं स्त्री और संपूर्ण विद्याओंकी स्वामिनी स्त्री हूं परंतु मैं आपके रूपकी प्रशंसा सुनकर नाभि राजासे विरक्त होकर आपके पास आई हूं और सब तरह आप पर मोहित हूं। कृपया मुझे दासी बनाइए और मेरे तमाम राज्यको ग्रहण कर भोग कीजिए। जयकुमारने जब उसकी ऐसी बातें सुनी तो उत्तरमें निवेदन किया कि—हे सुंदरी ! आपको ऐसे वचन नहीं शोभते हैं। कारण कि आप स्त्री रत्न हो और मेरे सर्वथा परस्त्री माताके समान है। इसलिए मुझे ऐसे तुम्हारे राज्यसे कोई काम नहीं है। इसके सिवाय रतिप्रभदेवने और भी कई उपसर्गों द्वारा जयकुमार को डिगाना चाहा परंतु उसका मनमेरु जरा भी चलायमान न हुआ तब रतिप्रभदेवने अपने वास्तविक रूपको धारण करके सब हाल जयकुमारसे कह सुनाया और कहा—मैं आप के परिग्रहपरिमाण व्रतकी परीक्षाके लिए ही आया था। परन्तु आपका मन जरा भी विचलित न देखकर मुझे बडा आनन्द हुआ और आप सर्वथा पूज्य व माननीय हैं। आप की जो इंद्र प्रशंसा करते हैं उसके आप सर्वथा योग्य हैं। ऐसा कहकर बहुतसे आभूषणों द्वारा पूजा करके अपने स्थानको चला गया। इसलिए सबको जयकुमारकी तरह परिग्रहपरिमाण व्रत धारण करके पूज्य बनना चाहिए।

६०. भूधर जैन नीत्युपदेशसंग्रह सातवां भाग।

सुबुद्धि सखीके प्रति वचन।

मनहर कवित्त।

कहै एक सखी स्यानी सुन री सुबुद्धि रानी,
तेरो पति दुखी देख लागै उर आर है।
महा अपराधी एक पुग्गल है छहों माहि,
सोई दुख देत दीसै नाना परकार है॥
कहत सुबुद्धि आली कहा दोष पुग्गलको,
अपनी ही भूल लाल होत आप ख्वार है।
"खोटो दाम आपनो सराफै कहा लागै वीर"
काहूकौ न दोष मेरो भौंदू भरतार है॥ १॥

द्रव्यलिंगी मुनिका वर्णन।

शीत सहै तन धूप दहै, तरु हेट रहै करुणा उर आनै।
झूठ कहै न अदत्त गहै, वनिता न चहै लव लोभ न जानै॥
मौन वहै पढि भेद लहै, नहि नेम जहै व्रत रीति पिछानै।
यों निवहै पर मोख नहीं, विन ज्ञान यहै जिनवीर वखानै॥

अनुभव प्रशंसा।

मनहर।

जीवन अलप आयु बुद्धि बलहीन तामैं,
आगम अगाधसिंधु कैसैं ताहि डांक है।

---

१ आर–कील। २ वृक्षके नीचे। ३ जरा भी। ४ छोड़वे। ५ कैसें

द्वादशांगमूल एक अनुभौ अपूर्वकला,
भवदाघहारी घनसारकी सलाक है ॥
यह एक सीख लीजे याहीको अभ्यास कीजे,
याको रस पीजे ऐसो वीर जिनवाक है।
इतनो ही सार ये ही आतमको हितकार,
यहीं लौं मदार और आगें ढूकढाक है ॥ ३ ॥

भगवानसे प्रार्थना।

आगम अभ्यास होहु सेवा सरवज्ञ तेरी,
संगत सदीव मिलौ साधरमी जनकी।
संतनके गुनको वखान यह बान परो,
मेटो टेव देव परऔगुन कथनकी ॥
सवहीसौं ऐन सुखदैन मुख वैन भाखौं,
भावना त्रिकाल राखौं आतमीक धनकी।
जोलौं कर्म काट खोलौं मोक्षके कपाट तो लौं,
येही बात हूज्यो प्रभु पूजो आस मनकी ॥ ४ ॥

६१. श्रावकाचार नवम भाग।

प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत।

सदा अष्टमी चतुर्दशीको, तज देना चारों आहार।
यह प्रोषध उपवास कहाता, दिनभर रहै धर्म व्यवहार ॥

बाकेंगा पार होगा। ६ संसाररूपी उष्णताके हरनेवाले। ७ चंदनकी ८ सलाका-सलाई। ९ जिनवाक्य वा जिन वचन है। १० पाने योग्य है ११ दूसरी सब बातें व्यर्थ है।

अंजन मंजन न्हाना धोना, गंध पुष्प सजधज करना।
आरंभ पांच पाप हिंसादिक, इस दिन बिलकुल परिहरना॥२॥

हमेशह अष्टमी चतुर्दशीके दिन चार प्रकारके आहार को छोड देनेको उपवास कहते हैं परन्तु पहिले रोज और पारनाके दिन एकासन करके १६ पहरका उपवास करना सो प्रोषधोपवास है। प्रोषधोपवासके दिन पांचों पापोंका, और शृंगार, आरंभ, गंध पुष्प, स्नान अंजन मंजनका सर्वथा त्याग करके १६ पहर तक ज्ञानध्यान स्वाध्यायमें तत्पर रहना चाहिए॥ ८२॥

प्रोषधादिका भेद।

तजना चारों आहारोंका, होय निराकुल है उपवास।
एकबार खानेको प्रोषध, कहते हैं जो प्रभुपददास॥
दो प्रोषधके विचमें करना, एक आशना कहलाता।
प्रोषधोपवास है पूरा, भव्य जनोंको सुखदाता॥ ३॥

खाद्य स्वाद्य लेह्य पेय इन चारों आहारोंका त्याग करना सो तो उपवास है और एक ही वक्त खाना सो प्रोषध (एकासना) है, और दो प्रोषधोंके बीचमें (अष्टमी चतुर्दशीको) एक उपवास करना सो प्रोषधोपवास है॥ ८३॥

प्रोषधोपवासके पांच अतीचार।

देखे भाले बिन चीजोंका, लेना मलादि तज देना।
और बिछाना बिस्तरका त्यों, व्रत कर्तव्य भुला देना॥

तथा अनादर रखना व्रतमें, हैं ये पांचों ही अतिचार ।
इन्हे छोड़कर व्रतको पालो, धारो उरमें धर्म विचार ॥८४॥

विना देखे विना सोधे पूजा वगेरहके वर्तनादि लेना व घसीटकर उठाना, जगह देखे विना मल मूत्रादिका त्याग करना, विना देखे शोधे बिस्तर चटाई विछाना, उपवासमें अनादर करना, और योग्य क्रियाओंको भूल जाना ये पांच प्रोषधोपवास नामक शिक्षा व्रतके अतीचार हैं ॥८४॥

वैयावृत्यका वर्णन ।

जो अनगार तपस्वी गुणनिधि, धर्म हेत उनको दे दान ।
प्रतिफलकी इच्छा विन है यह, वैयावृत्य सु व्रत सुखदान ॥
गुणरागी होकर मुनिवरके, चरण चापिये होय प्रसन्न ।
उनका खेद दूरकर दीजे, सेवा कीजे जो हो अन्य ॥८५॥

सम्यक्त्वादि गुणोंके भंडार गृहरहित तपस्वियोंको धर्मके अर्थी प्रत्युपकारकी वांछा वा अपेक्षाके विना आहारादि चार प्रकारका दान देना तथा उनके गुणोंमें अनुरागी हो कर संयमी जनोंके पग दाबने वा अन्य कष्ट दूर करने वगेरहसे नानाप्रकारकी सेवा करना सो वैयावृत्य नामका शिक्षा व्रत है ॥ ८५ ॥

दानका स्वरूप ।

सूनारम्भ तजा है जिसने, धर्म कर्म हित हर्षाकर ।
नवधा भक्ति भावसे ऐसे, आर्योंका तू गौरव कर ॥

निर्लोभीपन क्षमाशक्ति त्यों, ज्ञान भक्ति श्रद्धा संतोष।
निर्मल दाताके गुण हैं ये. धारो इनको तजकर दोष ॥८६॥

जिनके कूटने, पीसने, चूला सुलगाने, पानी भरने, और बुहारी देने रूप पंच सूनाके आरंभका त्याग है उन मुनियोंको, नवधा भक्तिपूर्वक सप्त गुणधारक श्रावकके द्वारा आदरपूर्वक आहार आदि दान देना सो दान कहाता है। पड़गाहना, उच्चस्थान देना, पादोदकको मस्तक पर लगाना, पूजा करना, प्रणाम करना, मन वचन कायकी शुद्धि रखना और एषणा शुद्धि अर्थात् शुद्ध आहार देना सो नवधा भक्ति है। श्रद्धा, संतोष, भक्ति, ज्ञान, निर्लोभता, क्षमा, और दान देनेकी शक्ति ये दाताके सात गुण हैं। इन गुणों सहित दाताही प्रशंसाके योग्य है ॥ ८६ ॥

दानका फल।

जिसने घर धर्मार्थ तजा, उस, अतिथीकी पूजा करना।
घर धंदेसे बढे हुये, पापोंका है सचमुच हरना ॥
मुनिको नमनेसे ऊंचा कुल, रूप भक्तिसे मिलता है।
मान दास्यसे, भोग दानसे, श्रुतिसे शुचि यश बढता है ॥

गृहरहित अतिथियोंको नवधा भक्तिपूर्वक आहार दान देना निश्चयसे गृहसंबन्धी आरंभोंके संचित पापोंको नष्ट करनेवाला है तथा ऐसे अतिथियोंको नमस्कार करनेसे ऊंचा कुल, दान देनेसे भोग, भक्ति करनेसे सुंदर रूप सेवा करनेसे मान प्रतिष्ठा और स्तुति करनेसे कीर्ति यश प्राप्त होता है ॥

बडका वीज भूमिमें जाकर, हो जाता है तरु भारी।
घेर घुमेर सघनघन सुंदर, समय पाय छायाकारी॥
वैसे ही हो अल्प भले हो, पात्रदान सुख करता है।
समय पाय बहुफल देता है, इष्ट लाभ बहु भरता है॥ ८८॥

जिसप्रकार बडका छोटासा बीज भूमिमें प्राप्त होकर समय पर बडा भारी सघन छाया देनेवाला वृक्ष हो जाता है उसीप्रकार मुनि अर्जिकादि पात्रोंमें दिया हुवा थोडासा भी दान समय पर मन वांछित बहुतसा फल देनेवाला होता है

दानके भेद व उनके प्रसिद्ध फल।

भोजन भेषज ज्ञानउपकरन, देना और अभय आवास।
चार ज्ञानके धारी कहते, दान यही चारो हैं खास॥
इनके पालन करनेवाले, श्रीश्रेण रु वृषभ सेना।
कोतवाल कौंडीश व शूकर, हुए प्रसिद्ध समझ लेना॥८९॥

चार ज्ञानके धारक गणधरोंने, आहारदान, औषध दान, ज्ञानके साधन शास्त्रादि उपकरण और भयरहित स्थानदान ये चार प्रकारके ही दान कहे हैं। इन चारों दानोंमेंसे आहारदानमें श्रीषेण राजा, औषधदानमें सेठकी पुत्री वृषभसेना, शास्त्रदानमें कौंडेशनामका कोतवाल, और मुनिको वस्तिका दानमें शूकर प्रसिद्ध हो गया है॥ ८९॥

वैयावृतके भेदमें ही भगवत्पुजा करना।

प्रभुपद कामदहनकारी है, वांछितफल देनेवाले।
उनका प्रतिदिन पूजन करिये, वे सब दुख हरनेवाले॥

जिनपूजाको एक पुष्प ले, मेंडक चला मोद धरके।
मुआ मार्गमें हुआ देव वह, महिमा महा प्रगट करके ॥९०॥

इच्छित फल देने वाले, कामबाणको भस्म करनेवाले देवाधिदेव अरहंत भगवानके चरणोंमें पूजा करना समस्त दुखोंका नाश करनेवाला अत्यावश्यकीय कार्य है। इस कारण इसे आदरपूर्वक प्रतिदिन करना चाहिये। राजगृही नगरी में महावीरस्वामीके पधारनेपर फूलकी एक पांखुडी लेकर एक मेंडक पूजा करनेके भाव धारण कर चला था, वह श्रेणिक राजाके हाथीके पांवतले दबकर मरगया और पूजाके भावके पुण्यसे स्वर्गमें जाकर एक ऋद्धिधारी देव हुवा और उसने पूजाके भावका फल जान उसी वक्त समवशरणमें आकर पूजाकी।

वैयावृतके अतिचार।

हरे पत्रके भीतर रखना, हरे पत्रसे ढक देना।
देने योग्य भोजनादिकको, पात्र अनादर कर देना॥
याद न रखना देनेकी विधि, अथवा देना मत्सर कर।
हैं अतिचार पांच इस व्रतके, इन्हें सर्वथा तू परिहर॥ ९१॥

दान देनेवाली वस्तुको हरित पत्रसे ढकना, और हरित पत्रमें रखना, दान अनादरसे देना, दानकी विधि वगैरह भूल जाना, और ईर्षा बुद्धिसे देना ये पांच वैयावृत्य नामक शिक्षाव्रतके पांच अतिचार हैं॥ ९१॥

६४. श्रीषेण राजाकी कथा

—————:०:—————

मलय देशके रत्न संचयपुरमें श्रीषेण राजा राज्य करते थे जिनकी स्त्रीका नाम सिंहनंदिता था और दूसरीका अनिंदिता, उनके क्रमानुसार इंद्र और उपेंद्र दो पुत्र थे, वहींपर सात्यकि ब्राह्मण रहता था जिसकी स्त्री जंबू और पुत्री सत्यभामा थी। पटनामें रुद्रभट्ट ब्राह्मण बालकोंको वेद पढाया करते थे जब वेदका पाठ चलता था उसी समय रुद्रभट्ट ब्राह्मणकी दासी (नौकरनी) का लडका कपिल वहीं पास में छुपकर वेद सुन लिया करता था। उसकी बुद्धि बडी तीक्ष्ण थी इसलिए थोडे दिनमें ही वेदका ज्ञाता हो गया। जब यह खबर रुद्रभट्टको लगी तो वह बडे नाराज हुए, और उसी समय वहांसे कपिलको निकाल दिया, वह वेद तो पढ ही चुका था पर जातिका शूद्र होनेसे उसने यज्ञोपवीत धारण कर लिया और ब्राह्मण बनकर रत्नसंचयपुर नगरमें पहुंचा, रत्नसंचयपुरमें वास करनेवाले सात्यकिने जब इसे देखा तो विचारने लगा कि यह वेदका विद्वान और सुंदर है इसलिये अपनी लडकी सत्यभामाका इसीके साथ विवाह कर देना चाहिये और उसने वैसा ही किया। अब यह अपने दिलमें बडा खुशी हुआ और सत्यभामाके साथ भोगविलास करने लगा परंतु रात्रि समयमें इसकी विटचेष्टा देखकर उसे

विश्वास नहीं होता था कि यह ब्राह्मण है परंतु ऊपरी तौर से उससे बातचीत करना ही पडती थी, कारण कि सत्यभामा उसकी हो चुकी थी, परंतु सत्यभामा हमेशा इसी तलाशमें रहा करती थी कि इसका वास्तविक पता लगाऊं। भाग्यसे रुद्रभट्ट तीर्थयात्रा करता हुआ रत्नसंचयपुरमें आ पहुंचा, जब कपिलने इसे देखा तो उसका बडा आदर सत्कार किया और उसे बहुत धन भी इस भयसे दिया कि मेरी पोल न खोल देवें, मनुष्योंने जब यह पूछा कि आपके ये कौन हैं तो उस कपिलने उसको अपना पिता बताया रुद्रभट्टने भी लालचमें आकर इसे स्वीकार कर लिया। अब तो मनुष्योंको कपिलके विषयमें सच्चा विश्वास हो गया था कि कपिल सच्चा ब्राह्मण और वेदपाठी है परन्तु सत्यभामा का अभी संदेह नहीं गया था इसलिये जैसे ही कपिल कारण वश दूसरे ग्राम गया कि सत्यभामाने रुद्रभट्टको खूब धन देकर निवेदन किया—महाराज सत्य बतलाइए कि कपिल आपके कौन हैं, पहिले तो रुद्रभट्ट बडे विचारमें पड गये परंतु सत्यभामाके आग्रह करने पर सत्य हाल कह सुनाया और आप उसी समय घरको रवाना हो गए। सत्यभामा कपिलको बनावटी ब्राह्मण समझकर उससे विरक्त हो गई और कुपित होकर सिंहनंदिता महारानीके पास चली गई। उसने अपनी पुत्रीके समान समझकर उसे रख लिया। एक बार श्रीषेण राजाने बडी भक्तिसे विधिपूर्वक चारण मुनियों

को आहार दान दिया जिसकी उन दोनों रानियों और सत्यभामाने बडी अनुमोदनाकी, श्रीषेण राजा उस दानके प्रभावसे मरकर भोगभूमिमें पैदा हुए और उन दोनों रानियों व सत्यभामाने भी अनुमोदनासे वहीं पर (भोगभूमि) दिव्य सुखको प्राप्त किया और श्रीषेणराजा वहांसे च्युत होकर मनुष्य व देवके भवोंको प्राप्तकर अन्तमें शांतिनाथ तीर्थंकर हुए। ठीक है—जो आहार दानकी अनुमोदनासे भोगभूमि आदिके सुखको प्राप्त कर मोक्ष सुखकी प्राप्ति कर लेता है तो आहार दान देनेवालेको अन्य सुखोंकी प्राप्ति हो जाय तो आश्चर्य क्या है।

———:०:———

६५. गुरु शिष्य प्रश्नोत्तर।

गुरु—कहो मोतीलाल ! तुम कल सामको पढनेके लिये क्यों नहीं आये ?

शिष्य— गुरुजी कल हमारी विरादरीमें एक विवाह था उसमें जाना पडा इस कारण आना नहिं हुआ। मुझे मालूम नहीं थी कि—विवाहमें जाना पडैगा, नहीं तो मैं आप से आज्ञा लेकर ही जाता। लाचार पिताजीके आग्रहसे जाना पडा सो अपराध क्षमा करैं।

गुरु—कौनके यहां ब्याह था कन्या दाताका क्या नाम है ?

शिष्य—गुरुजी ! कन्यादाता नहीं, किंतु कन्याविक्रेता कहना चाहिये जिसका नाम रूपचंदजी है।

गुरु—क्या कहा ? क्या उसने कन्या बेची है? कन्या पर रुपये लेकर व्याह किया है ?

शिष्य—हां गुरुजी ! विचारा गरीब आदमी है। धंधा रोजगार है नहीं, तीन चार बेटियां हैं। एक एकके विवाहमें कमसे कम एक २ हजार रुपये चाहिये सो हजार पंद्रहसौ ले लिये तो क्या हर्ज है ?

गुरु—क्या कहा ! रूपचंद गरीब आदमी है ?सुनता हूं वह तो व्याज वा गहना गिरवी रखनेका काम करता है और खूब व्याज लेता है। खैर ! वह गरीब ही सही तो क्या कन्या को बेचकर उसने रुपये लिये हैं ? हजार रुपये व्याहमें खर्च करनेकी क्या जरूरत है ? दूलहा, दूलहाका भाई, भतीजा, बामन, चौथा नाई बुलाकर बेटीका पीला हाथ कर देता, तो क्या नाक कट जाती ?

शिष्य—नाक तो जरूर कट जाती क्योंकि उसने बडी बेटीका विवाह भी जमाईसे चुपके २ तीन हजार लेकर किया था जिसमें बिरादरीको एक हजार रुपये लगाकर खूब लड्डू जिमाये थे जिससे बडा भारी नाम हुआ था। यदि उसी प्रकार बिरादरीको लड्डू न जिमाता तो पहिले व्याहकी सब शोभा नष्ट हो जाती !

गुरु—धिक्कार है ऐसे नामको और सैकडों धिक्कार हैं

उसके यहां लड्डू जीमनेवालोंको और सबसे अधिक धिक्कार उनको जो रुपये देकर विवाह करते हैं।

शिष्य—गुरुजी! जरा विचार तौ कीजिये! आपने तौ सबको धिक्कार ही धिक्कार दे दिया परन्तु मेरी समझमें नहिं आता कि—वे धिक्कारके पात्र क्यों हैं? बेटीवाला तौ गरीब है बेटीका विवाह करै तौ वियाना भात देकर सारी बिरादरीको (सबकी देखा देखी) न जिमावै तौ निंदा करैं इसलिये उसने हजारके खर्चकी जगह दो हजार लेलिये सो एक हजार तौ बेटीके ब्याहमें लड्डू जिमा दिये, एकहजार रह गये उससे उसका गुजारा दो तीन वर्ष चल जायगा। बिरादरीवालोंको जीमनेके लिये लड्डू मिल गये। उनका क्या? उन्हे रुपया खर्च किये विना बहू कहांसे मिलै तब दो हजार देकर ब्याह कर लिया और घर बांध लिया। बालबच्चोंको सम्भालने वाली घरमें आगई। अगर ऐसा नहिं करते तौ क्या करते?

गुरु—भाई! करते क्या चुल्लू भर पानीमें नाक डुबो कर मरजाते। हाय! हाय! कैसा घोर कलियुग आगया है। कन्या जमाईका पैसा खाना तौ दूर रहो, बलके जिस गांवमें कन्या व्याही जाती उस गांवके कूएका पानी पीना तक पाप समझा जाता था। आज हमारे भारतवासी ऐसे नालायक लोभी पापी हो गये जो कन्याको बेच कर बूढेके साथ ब्याह कर दो चार वर्षमें विधवा बनाकर उसका जन्म नष्ट करके

आप उस पैसेसे मौज उडाने लगे। वह उस कन्याका पिता नही किंतु उस कन्यारूपी गायको काटनेवाला कसाई है। और जो उस कन्याके विवाहमें लड्डू जीमते हैं वे उस कन्यारूपी गायका मांस खानेवाले हैं। और वह नर पिशाच जिसने बुढापेमें भी विषयोंसे विरक्त न हो कर विचारी एक कुमारी कन्याको दो हजार रुपये देकर उसे वैधव्य दुख देनेको घर में डाला वह महाकसाई है। छी! छी!! कैसी घृणित बात तूने कही है। दूर रह, मेरी जाजम न छूना क्योंकि तू भी उस कसाईके यहां लड्डू खाकर आया होगा सो तू भी कसाईकी बराबर है।

शिष्य—गुरुजी घबराइये नहीं, मैंने उसके यहां खाना तो क्या पानी भी नहिं पीया, पान तक नहिं खाया। मैंने उस बुड्ढे बाबाको देखकर उसी वक्त प्रतिज्ञा करली थी कि आजसे जो कन्याका विवाह रुपये लेकर करेगा। मैं उस कन्याके पिताके यहा और वरके यहां पानी भी नहिं पीऊंगा।

गुरु—साबास बेटे साबास! ऐसाही करना चाहिये अब तुम लोग ही इस पतित होती हुई जाति वा देशका कल्याण कर सकोगे यदि तुम सब लडके और नवयुवक ऐसे ऐसे अन्यायोंके विरुद्ध खडे हो जावोगे तो ये अत्याचार जो होने लगे हैं, शीघ्र ही उठ जांयगे। आज तूने उन कसाइयोंकी बात कह कर मेरे चित्तको बडी भारी गिलानी दिलाई मेरा मन बडा खराब हो गया है सो तुम सब ही चले जावो आज इस अन्यायके लिये पाठशाला बंद रखना ही ठीक है।

शिष्य—ठीक है, गुरुजी हमलोगोंका मन भी इस घृणित चर्चासे दुःखित हो गया है (प्रणाम) ।

६४. श्मश्रुनवनीतकी कथा ॥

अयोध्यामें भवदत्त सेठ रहते थे जिनकी स्त्रीका नाम धनदत्ता और पुत्रका नाम लुब्धदत्त था । वह एक समय व्यापारकेलिये परदेश गया और वहां बहुत धन कमाकर लौट आया परन्तु रास्तेमें चोरोंने लूट लिया । बेचारा वहांसे चल दिया और एक गोपालके मकान पर आया जो रास्ते ही में था । उसने ग्वालासे कुछ मट्ठा (तक्र) मांगा, उसकी याचना सफल हुई किंतु उस मट्ठेमें ऊपर थोडा सा घी उतरा रहा था उसे देखकर उसने विचार किया कि यदि मैं यहां थोडे दिन ठहरूं और प्रतिदिन मट्ठा लेकर उसका घी निकाल लिया करूं तो कुछ न कुछ इकट्ठा हो जायगा जिससे मैं पुनः व्यापार कर सकूंगा ऐसा विचार कर वहीं रहने लगा और वैसा करना शुरू कर दिया । लोगोंने ऐसा देख कर इसका नाम श्मश्रुनवनीत रख दिया । थोडे दिनमें उसके पास एक प्रस्थप्रमाण घी हो गया जिसे पात्रमें भरकर जहां सोता था पैरोंके अन्तमें रख लिया और ठंडके कारण पासमें ही अग्नि जलाकर लेट गया और विचार करने लगा कि इस घी को

बेचकर जो पैसा आयेंगे उनसे खूब धन उपार्जन करूंगा। जब सेठ पद्वी प्राप्त कर लूंगा तब राजा महराजा होनेका प्रयत्न करूंगा उसे पालेने पर जब चक्रवर्ती हो जाऊंगा तब अपने सतखने मकान पर सोया करूंगा और जब मेरी स्त्री मेरे पैर दाबैगी तब मैं प्रेमसे पैर फटकार कर (मारकर) कहूंगा कि तुम्हे पैर दाबना ठीक नहीं आता! ऐसा विचार करते हुए उसने एक पैर उस समय फटकार ही दिया जिससे पैरोंके पास रक्खा हुआ घी फैल गया और उस जलती हुई अग्नि पर पड़ा जिससे अग्नि खूब प्रज्वलित हो गई और उस झोपडेके द्वारमें ही लग गई जिससे श्मश्रुनवनीतका निकलना असध्य हो गया। बेचारा उस आगसे जलकर मरगया और मरकर दुर्गतिको गया। इस लिये मनुष्योंको चाहिये कि थोडेमें ही सन्तोष रख अपने जीवनको सफल करें श्मश्रुनवनीतकी तरह परिग्रहमें पड कर अपनी जिन्दगी बरबाद न करें।

---:o:---

६५. सेठकी पुत्री वृषभसेनाकी कथा।

---:o:---

कावेरी नगरमें राजा उग्रसेन थे वहीं पर धनपति सेठ रहता था जिसकी सेठानीका नाम धनश्री और पुत्रीका वृषभसेना था। उस वृषभसेनाकी दासी रूपवतीने एक समय

वृषभसेनाके स्नान जलसे भरे हुए गड्ढेमें एक रोगी कुत्तेको गिरा हुवा देखा। जैसे ही कुत्तेका शरीर जलसे भीगा कि-कुत्तेका विल्कुल रोग चला गया और सुंदर शरीर बनगया यह देखकर रूपवती, वृषभसेनाका स्नान जल ही आरोग्य का कारण समझकर थोडासा जल अपनी मांके पास ले गई और आंखोंको लगा दिया, लगातेही बारह वर्षकी धुंद चली गई और उसे खूब दीखने लगा अब तो यह दासी प्रत्येक रोगमें उसी जलको काममें लाने लगी और सारे नगरमें प्रसिद्ध हो गई। एक समय उग्रसेन राजाने बहुत सेना लेकर रणपिंगल मंत्रीको अपने वैरी राजा मेघपिंगल पर भेजा। रण-पिंगलने जाकर उसके नगरको घेर लिया, परंतु मेघपिंगलने दुष्टताके साथ कुओंके जलोंमें विष डाल दिया जिससे रणपिंगल बीमार पड गया और सेनाके साथ घर लौट आया परंतु वृषभसेनाके स्नान जलसे तंदुरुस्त हो गया। मेघपिंगलकी ऐसी दुष्टता सुनकर राजा उग्रसेन सेना लेकर स्वयं जा चढे, परंतु वही हाल इनका भी हुवा इसलिये वे भी अपने देशको लौट आये, और बहुत बीमार पड गए। परंतु रणपिंगलसे जब राजाने वृषभसेनाके स्नानजलकी तारीफ सुनी तो उसी समय जल लेनेके लिए आदमी भेजा, इसे आया हुवा देखकर धनश्रीने अपने पतिसे कहा कि अपनी पुत्रीका स्नानजल राजाके शिरपर छिडकना अच्छा नहीं है। सेठने कहा-इसमें अपना कोई दोष नहीं है। यदि राजा

जलके विषयमें पूछेंगे तो मैं स्पष्ट हाल कह दूंगा। रूपवती जल लेकर चली गई और राजाके शिरपर छिड़क दिया छिड़कते ही राजा बिल्कुल स्वस्थ हो गया। जब उग्रसेनने रूपवतीसे जलके माहात्म्यको पूछा तो उसने ठीक २ कह सुनाया। राजा यह सुनकर बडे चकित हुये और विचारने लगे कि जिसके स्नानजलका तो इतना माहात्म्य है तो उस पुत्रीका कितना न होगा इसलिये राजाने उसी समय वृषभसेनाके पिताको बुलाया और अपने साथ वृषभसेनाके विवाह कर देनेको कही। सेठने उत्तरमें कहा कि—महाराज मैं आपके योग्य तो नहीं हूं परन्तु आपकी आज्ञाका उल्लंघन भी नहीं कर सकता! हां! एक बात अवश्य है कि आप को जिनेन्द्र भगवानके आगे अष्टान्हिकाकी पूजा बडे सज-धजके साथ करनी पडेगी और तमाम जंतुओंको बंधनसे मुक्त कर देना पडेगा और कैदियोंको भी छोड देना होगा। राजाने यह स्वीकार कर लिया और वृषभसेनाके साथ विवाह कर पट्टरानी बना दिया, एवं अपना काल सुखसे उसीके साथ विताने लगा। यद्यपि राजाने सबको छोड दिया था तो भी बनारसके राजा पृथ्वीचंदको उसकी अतिदुष्टता के कारण नहीं छोडा था, इसलिए पृथ्वीचंद्रकी रानी नारायणदत्ताने अपने पतिको छुडवानेके लिए मंत्रियोंके साथ विचार करके बनारसमें सब जगह वृषभसेनाके नामसे दान-शालायें खुलवा दीं। वहां नाना देशके भिक्षुक भोजनकर रानी

वृषभसेनाकी बडी प्रशंसा करने लगे और वह प्रशंसा रूपवती के कानों तक भी पड गई। रूपवतीने गुस्सा होकर रानीसे कहा कि–आप मेरे विना पूछे ही बनारसमें दानशाला खोल वैठीं। रानीने कहा–मुझे तो इस वातका पता तक भी नहीं है। उसी समय रानीने इसका निश्चय करनेके लिये बनारस को दूत भेजे और वे थोडे दिनमें लौटकर आगए। रानी के पूंछने पर उनने सत्य २ कह सुनाया कि पृथ्वीचंद्रकी रानीने अपने पतिको छुड़ानेके लिए आपको पुनः स्मरण करानेके लिए आपके नामसे दानशालायें खोल रक्खी हैं। रानीने उसी समय राजासे पृथ्वीचंदको छोड देनेको कहा और राजाने वैसा ही किया। पृथ्वीचंदके बन्धनमुक्त हो जाने पर पृथ्वीचन्दको बडी खुशी हुई और उसने रानीका बडा उपकार माना उसीप्रकार राजाका भी। यहां तक कि राजा रानीकी एक तसवीर ऐसी वनवाई जिसमें अपने शिर को उनके पैरोंमें रखवाया और वह राजाको समर्पण करदी जिससे राजा अतिप्रसन्न हुए और पृथ्वीचन्द्रसे मेघपिंगल को जीत लेनेको कहा। मेघपिंगल पृथ्वीचन्दसे पहिले ही डरता था इसलिए जव उसने सुनी कि पृथ्वीचन्द छोड दिया गया है और वह मुझे पराजय करनेके लिए आरहा है तो वह इसके पहुंचनेके पहिलेही राजा उग्रसेनसे आ मिला और नमस्कार कर आज्ञाको मानना स्वीकार किया। राजा उग्रसेन मेघपिंगलसे वहुत खुश हुए और

उनने उस दिनसे ग्रामीण राजाओं द्वारा भेटमें आई हुई चीजोंको मेघपिंगल और अपनी वृषभसेना रानीको आधा २ देनेको कह दिया। भाग्यसे उसी समय दो रत्न-कम्बल आ गए। राजा उग्रसेनने उनमेंसे एक तो मेघपिंगलको दे दिया जिस पर उसका नाम अंकित था और दूसरा वृष-भसेनाका नाम डालकर वृषभसेनाको सौंप दिया। एक समय कारणवश मेघपिंगलकी रानी उस कम्बलको ओढकर वृष-भसेनाके घर गई और वहां पर उसका कंबल बदले पड गया और उसको ओढकर अपने घर चली आई। मेघपिंगल भी उसी बदले हुये कंबलको ओढकर राजा उग्रसेनसे मिलने आया। राजाको वृषभसेनाका कंबल मेघपिंगलके पास देख कर कुछ संदेहसा पैदा हो गया और मुख भी गुस्सामय कर लिया। उग्रसेन राजाको क्रोधित देखकर लौट आया और यह विचार कर कि राजा मुझपर नाराज है दूरदेश चला गया। जब उग्रसेन महलमें गये और रानीके पास मेघ-पिंगलका कंबल देखा तो अब वह खूब गुस्सा हो गया और यह निश्चय करके कि वृषभसेनाका आचरण खराब है उसी समय राजाने वृषभसेनाको मारनेके लिये समुद्रजल में फिकवा दिया परंतु वृषभसेनाने प्रतिज्ञा करली थी कि-यदि मैं इस उपसर्गको सहन कर लूंगी तो खूब तपश्चरण करूंगी। इसके शील माहात्म्यसे ऐसा ही हुवा कि जलदेवता-ओंने आकर पानीमें सिंहासन रच दिया, जिसके आस

पास आठ प्रातिहार्य शोभायमान हो रहे थे। उसपर वृषभसे-नाको विराजमान देखकर नगरके लोगोंको बडा आश्चर्य हुआ। उग्रसेन राजा भी दौडा आया, अपने अपराधकी क्षमा कराई और घर चलनेको कहा। जैसेही यह लौटकर आ रही थी कि वनमें आते हुये गणधर मुनिको देखा। देखकर वृष-भसेनाने भक्तिसे नमस्कार किया और उन अवधिज्ञानी मुनि से अपना पूर्वभव पूछना आरम्भ किया। मुनि महाराज बोले कि—पहिले भवमें तू इसी नगरमें नागश्री नामकी ब्राह्मण-पुत्री थी और उग्रसेन राजाके मंदिरमें बुहारी लगाया करती थी एक दिन सायंकाल एक मुनि कोटके भीतर पद्मासन ल-गाए ध्यान कर रहे थे जब तुपने (नागश्री) मुनिको देखा तो क्रोधसे कहा कि—यहांसे उठ। राजा कटक सहित आ रहे हैं इसलिये मैं बुहारी दूंगी यदि तू न उठेगा तो राजाकी सेना से कुचल कर मर जायगा परन्तु मुनि तो अपने ध्यानमें तल्ल-लीन थे इसलिये तुझसे कुछ भी न कहा। जब तुझे ज्यादा गुस्सा उमड आया तो इधर उधरका कूरा कचरा लाकर मुनिके ऊपर डारना शुरू कर दिया और इतना डारा कि—मुनि महाराज उससे बिलकुल दब गये। सुबहमें राजा दर्श-नार्थ आये। वह उस जगह पहुंचे जहां मुनि कूडा कचरासे ढके हुये ध्यानमें तल्लीन थे। यद्यपि मुनिजीका शरीर बिलकुल नहीं दीखता था परंतु श्वासोच्छ्वास मुनि महाराजकी चल रही थी जिससे कूडा कचरा हिलता था।

राजाने देखकर कहा कि—यह क्या है ? परंतु किसीको मालूम होता तो कोई उत्तर देता, इसलिये जब राजाने कुछ उत्तर न पाया तो उस कूडेको उसी समय अलग करनेका हुकुम दिया । जैसे ही वह अलग किया मुनिजी ध्यानस्थ दिखाई देने लगे । राजाने बडे प्रेमसे दर्शन किये और स्वयमेव हाथोंसे शरीर पोंछना शुरू कर दिया । जब तुमने यह देखा तो अपनी बडी निंदा की और उसी समय मुनि महाराजसे अपने अपराधकी क्षमा मांग नानाप्रकारकी औषधियां लगाना शुरू-कर दिया और सेवा चाकरी भी खूब करी जिससे मुनिकी पीडा दूर होगई उसी औषधि दानके प्रभावसे धनपतिकी कन्या वृषभसेना हुई हो और सुन्दर सर्व औषधिसम्पन्न शरीर धारण किये हो परन्तु कूडा कचराके कारण तुम्हें यह कलंक भुगतना पडा है । वृषभसेना मुनि महाराजके मुखारविंदसे यह सब सुनकर उन मुनिके पास आर्यिका हो गई, राजाने बहुत समझाया कि घर चलो परंतु वह न गई ।

इसलिये प्रत्येक मनुष्यको चाहिये कि यदि सुंदर और सम्पूर्ण औषधियोंके मूल शरीर पानेकी इच्छा है तो वृषभसेना की तरह रोगी मुनि व श्रावककी वैयावृत्य करे और औषधि दान दे और पापबंधसे बचनेका प्रयत्न करे ।

६६. भूधरजैननीत्युपदेशसंग्रह आठवां भाग ।

जिनधर्म प्रशंसा ।

दोहा ।

छये अनादि अज्ञानसौं, जगजीवनके नैन ।
सब मत मूठी धूलकी, अँजन है मत जैन ॥ १ ॥
मूल नदीके तरनको, अवर जतन कछु है न ।
सब मत घाट कुघाट हैं, राज घाट है जैन ॥ २ ॥
तीन भुवनमें भर रहे, थावर जंगम जीव ।
सब मत भक्षक देखिये, रक्षक जैन सदीव ॥ ३ ॥
इस अपार जगजलधिमें, नहिं नहिं और इलाज ।
पाहन[1] वाहन धर्म सब, जिनवर धर्म जिहाज ॥ ४ ॥
मिथ्या मतके मद छके, सब मतवाले[2] लोय ।
सब मतवाले[3] जानिये, जिनमत मत्त न होय ॥ ५ ॥
मतगुमान[4] गिरि पर चढे, बडे भये मन माहिं ।
लघु देखैं सब लोककौं, क्यौं हू उतरत नाहिं ॥ ६ ॥
चाप चखनसौं[5] सब मती, चितवत करत निवेर ।
ज्ञान नैनसौं जैन ही, जोवत[6] इतनो फेर ॥ ७ ॥
ज्यौं बजाज ढिंग राखिकैं, पट परखे परवीन ।

---

१ पत्थरकी नावें । २ सर्वधर्मोवाले । ३ मदोन्मत्त-पागल । ४ धर्मके अभिमानरूपी पहाड पर । ५ चमडेके नेत्रोंसे-बाहरी नजरसे । ६ देखते हैं । ७ । पास पास रखकर सब कपडोंकी जांच करता है ।

त्यों मतसौं मतकी परखि, पावै पुरुष अमीन ॥ ८ ॥
दोय पक्ष जिनमत विषैं, नय निश्चय व्यवहार।
तिन विन लहै न हंस[1] यह, शिव सरवरकी पार ॥ ९ ॥
सीझे सीझैं सीझ हैं, तीन लोक तिहुँ काल।
जिन मतको उपकार सब, जिन[2] भ्रम करहु दयाल ॥ १० ॥
महिमा जिनवर वचनकी, नहीं वचनवल होय।
भुजवलसौं सागर अगम, तिरै न तरहीं कोय ॥ ११ ॥
अपने अपने पंथको, पोखै सकल जहांन।
तैसैं यह मत पोखना, मत समझो मतिमान ॥ १२ ॥
इस असार संसारमें, अवर न सरन उपाय।
जन्म जन्म हूज्यो हमें, जिनवर धर्म सहाय ॥ १३ ॥

६७. कौंडेशकी कथा।

कुरुमरी गांवमें गोविंद गोपाल रहा करता था वह कोटर से प्राचीन शास्त्रको निकालकर पूजा किया करता था। एक वार पद्मनंदी मुनि वहां आए और उन्हें देखकर उस शास्त्रको मुनिमहाराजके सुपुर्द कर दिया कारण कि वह लिखा पढा न था। मुनि उस पुस्तकका स्वाध्याय प्रतिदिन किया करते थे और उसीका सब जगह उपदेश दिया करते थे। कुछ

1 आत्मा जीव। 2 मतकरो।

दिन ऐसा कर मुनि उसी कोटरमें पुस्तक रखकर चले गए। गोविंदने फिर शास्त्र निकाल लिए और पूर्वकी तरह पूजा करने लगा। वह ग्वाला निदानसे मरकर उसी नगरमें ग्रामकूटका पुत्र कौंडेश राजपुत्र हुआ और थोड़े दिन बाद जब वह बडा हो गया तो उन्हीं पद्मनंदी मुनिको देखकर पूर्वभवका स्मरण कर वैराग्यको प्राप्त हो गया और उन्ही मुनि महाराजके पास कौंडेश नामके बड़ेभारी मुनि हो गए जो द्वादशांगका अध्ययनकर श्रुतकेवली हो गए। ठीक है जब शास्त्रदानके प्रभावसे केवली पद प्राप्त हो सकता है तो श्रुतकेवलीपदका प्राप्त कर लेना कोई आश्चर्य नहीं है जैसा कि गोविंदके जीवने प्राप्तकिया।

—:०:—

६८. श्रावकाचार दशम भाग।

—:०:—

सल्लेखना या संन्यास मरणका स्वरूप।

आजावे अनिवार्य जरा, दुष्काल रोग या कष्ट महान।
धर्महेतु तब तनु तज देना, सल्लेखना मरण सो जान॥
अंत समयका सुधार करना, यही तपस्याका है फल।
अतः समाधिमरण हित भाई, करते रहो प्रयत्न सकल॥

उपाय रहित बुढापा, दुष्काल, वा रोग या उपसर्ग आने पर धर्म धारण कर शरीरको तजदेना सो सल्लेखना वा सन्यास

मरण है अंत समयकी क्रियाको सुधार करना ही तमाम उमरके तपका फल है ऐसा समस्त मतालंबी कहते हैं। इस कारण जहांतक बन सके समाधिमरणपूर्वक मरनेमें प्रयत्न करना चाहिए ॥ ९२ ॥

समाधिमरण करनेकी विधि।

स्नेह वैर संबंध परिग्रह, छोड शुद्धमन त्यों होकर।
क्षमा करै निजजन परिजनको, याचै क्षमा स्वयं सुखकर ॥
कृत कारित अनुमोदित सारे, पापोंका कर आलोचन।
निश्छल जीवनभरको धारै, पूर्ण महाव्रत दुखमोचन ॥९३॥

समाधिमरणके समय राग द्वेष संबंध, बाह्याभ्यन्तर परिग्रह छोडकर शुद्धांतःकरण होकर प्रियवचनोंसे अपने कुटुंबियों व नोकर चाकरोंसे क्षमा करावै और अपने आप भी उन्हें क्षमा कर देवे। तत्पश्चात् छल कपटरहित कृत कारित अनुमोदनासे किए हुए समस्त पापोंकी आलोचना करके मरणपर्यंततक पांच महाव्रत धारण करै ॥ ९३ ॥

शोक दुःख भय अरति कलुपता, तज विषादको त्यों ही आह।
शास्त्रसुधाको पीते रहना, धारणकर पूरा उत्साह ॥
भोजन तजकर रहै दूधपर, दूध छोडकर छाछ गहै।
छाछ छोड ले प्रासुक जलको, उसे छोड उपवास लहै ॥
कर उपवास अपनी शक्तिसे, सर्व यत्नसे निज मनको।
णमोकारमें तन्मय करदे, तज देवे नश्वर तनको ॥

जीना चहना, मरना चहना, डरना, मित्र याद करना ॥
भावी भोगवांछना करना, हैं अतिचार इन्हें तजना ॥ ९५ ॥

तत्पश्चात् शोक दुःख भय अरति कलुषता विषादको तजकर उत्साहपूर्वक शास्त्रसुधामृत पीते रहना और भोजन छोडकर क्रमसे दूध पीयै, दूध छोडकर, छाछ कांजी, व छाछ कांजी छोडकर फक्त गर्म पानी पीकर ही रहै जब मरण अत्यंत निकट हो जावे तब गर्म पानी भी छोडकर उपवास धारण करके समताभावोंसे नाशवान शरीरको छोड देवै। इसप्रकार समाधिमरण करते समय जीनेकी इच्छा करना, मरनेकी इच्छा करना, मरनेका भय करना, मित्रादिकोंका स्मरण करना और आगामी भोगोंकी वांछा करना ये पांच अतीचार हैं सो इनको भी त्याग कर देना चाहिए ॥ ९४-९५ ॥

सल्लेखना धारण करनेका फल व मोक्षका स्वरूप।

जिनने धर्म पिया है वे जन, हो जाते हैं सब दुखहीन।
तीररहित दुस्तर निश्रेयस,-सुखसागरको पियें प्रवीन ॥
जहां नहीं है शोक दुःख भय, जन्म जरा बीमारी मौत।
है कल्याण नित्य केवल सुख, पावन परमानँदका श्रोत ॥९६॥

जिनने धर्मामृत पान किया है वे समस्त दुखोंसे छूट जाते हैं और अपार दुस्तर उत्कृष्ट मोक्षके सुखसमुद्रका सुधामृत पान करते हैं। मोक्षमें किसी प्रकारका शोक दुःख भय

जन्म जरा रोग मरण होकर केवलमात्र स्याद्वा अक्षय परमपावन सुखरूपी अमृतका श्रोत बहता है ॥ ९६ ॥ तथा—

सल्लेखना मनुज जो धारें, पाते हैं वे निरवधि मुक्ति।
विद्या दर्शन शक्तिस्वस्थता, हर्ष शुद्धि औ अतितृप्ति ॥
तीन लोकको उलट पलट दे, चाहें ऐसा हो उत्पात।
नहिं कल्पशतमें भी होता, मोक्षप्राप्त जीवोंका पात ॥ ९७ ॥

जो मनुष्य सल्लेखना धारण करते हैं वे परंपरा मोक्षको जाते हैं उस मोक्षमें अनंतज्ञान अनंतदर्शन अनंतवीर्य अनंतसुख हर्ष पवित्रता और अतिशय आत्मिक सुखकी तृप्ति होती है चाहे तीन लोकको उलट पलट करनेवाला भी उत्पात हो तो भी मोक्षप्राप्त जीवोंका सैकडों कल्प काल बीत जाने पर भी किसी प्रकार भी पतन नहीं होता ॥ ९७ ॥

कीट कालिमाहीन कनकसी, अतिकमनीय दीप्तिवाले।
तीन लोक शिरोमणि सो है, निःश्रेयस पानेवाले ॥
धन पूजा ऐश्वर्य हुकूमत, सेना परिजन भोग सकल।
होय अलौकिक अतुल अभ्युदय, सत्य धर्मका ऐसा फल ॥

मोक्ष पानेवाले जीव मुक्तिसे पहिले कालिमारहित सुवर्णकी कांतिके समान दीप्यमान होते हुए तीनलोकमें शिरोमणिभूत शोभाको धारण करते हैं क्योंकि समीचीन धर्म प्रतिष्ठा, धन, आज्ञा, ऐश्वर्य, सेना, सेवक, परिजन और कामभोगोंकी बहुलतासे अलौकिक अतुल अभ्युदयको प्रदान करता है ॥ ९८ ॥

६९. वसतिका दानमें सूकरकी कथा।

——:०:——

मालव देशके घटग्राममें देविल नामका कुंभकार और धम्मिल नामका नाई रहा करता था। उन दोनोंने एक मठ (मकान) इसलिए बनवाया जिसमें रास्तेगीर आकर ठहरें और अपनी थकावटको दूर करें। एक समय देविलने जब कि मकान बन चुका था, एक मुनिको लाकर सबसे पहिले ठहरा दिया और आप घरको चला गया। थोडी देर पीछे धम्मिल एक ढोंगी सन्यासीको वहां लाया और उसे वहां ठहराकर उन मुनिमहाराजको जिन्हें देविल ठहरा गया था, उन्हें निकाल दिया। वे विचारे वहांसे चलकर एक वृक्षके नीचे ध्यान लगाकर स्थित हो गए और रात्रिमें नाना प्रकारकी दंशमशक आदि परीषहको सहन किया। सुबह होते ही देविल और धम्मिल उस मठमें आ पहुंचे परंतु जब देविलने मुनिमहाराजको वहां न देखा तो उसे बडा गुस्सा आया और धम्मिलसे लडना शुरू कर दिया, इतनी लडाई हुई कि अन्तमें दोनों मरकर देविल तो सूकर हुआ और धम्मिल व्याघ्र हुआ। जिस गुहामें यह सूकर रहा करता था उसी गुहामें एक समय समाधिगुप्ति और त्रिगुप्ति नामके दो मुनि वहां आए और उस गुहामें ध्यान लगाकर स्थित हो गए। उन दोनों मुनियोंको सूकर देख

कर वडा प्रसन्न हुआ और पूर्व भवका स्मरण करके उनसे धर्मश्रवणकर व्रतोंको ग्रहण कर लिया। उधर वह धम्मिलका जीव व्याघ्र मनुष्योंका गंध सूंघकर उसी गुहामें आया और मुनियोंको भक्षण करनेके लिए गुफामें प्रवेश करना शुरू किया परन्तु सूकर गुहाके द्वारपर स्थित हो गया और व्याघ्र को भीतर प्रवेश नहीं करने दिया इससे व्याघ्र जल गया और खूब युद्ध करना शुरू कर दिया और इतना युद्ध हुआ कि आखिरको उन दोनोंका मरण हो गया। सूकरके तो परिणाम मुनिरक्षाके थे इसलिए वह तो सौधर्म स्वर्गमें देवोंसे पूज्य वडा देव हुआ और व्याघ्र खोटे भावोंसे नरकमें गया इसलिये सवको चाहिए कि अपने साधर्मीको अभय देकर उसके बचानेका प्रयत्न करें जैसा कि सूकरके दृष्टान्तसे मालूम पडा।

——:o:——

७०. श्रावकाचार ग्यारहवां भाग।

——:o:——

श्रावककी एकादश प्रतिमा वा कक्षा।

श्रावकाचार यानी गृहस्थका आचार जो ऊपरके पाठोंमें वर्णन किया है, विषय भेदसे भिन्न २ वर्णन किया है, इस पाठमें श्रावककी प्रथम क्रियासे लगाकर अंत तककी क्रिया तकके क्रमसे चढ़ते हुये ११ प्रतिमा वा पद (दरजे वा कक्षा) माने गये हैं वे क्रमसे वताये जाते हैं।

१। दर्शनप्रतिमा। इस प्रतिमा (कक्षा) में रहनेवाले मनुष्यको २५ दोषरहित शुद्ध सम्यग्दर्शन और आठ मूल गुण धारण करने पड़ते हैं।

पच्चीस दोष-शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, (द्वेषरूप ग्लानि) मूढ़दृष्टित्व, अनुपगूहन, अस्थितिकरण, अवात्सल्य, और अप्रभावना ये आठ दोष और आठ मद तीन मूढ़ता (देव मूढ़ता, गुरुमूढ़ता, लोकमूढ़ता,) और छह अनायतन इस प्रकार २५ दोष हैं। कुदेव, कुशास्त्र, और कुगुरु तथा इन तीनोंको माननेवाले तीन, इस प्रकार ६ आनयतन हैं इनको अच्छा समझना वा सेवा पूजादि करना सो दोष है। इन पच्चीस दोषोंको छोडनेसे सम्यग्दर्शन शुद्ध होता है।

आठ मूलगुण- उत्तम मध्यम जघन्यके भेदसे तीन प्रकार के कहे गये हैं।

१। त्रस हिंसाका त्याग १ स्थूल झूठका त्याग २ स्थूल चोरीका त्याग ३ परस्त्रीका त्याग ४ परिग्रहका परिमाण करना ५ मद्यपानका त्याग ६ मांस भक्षणका त्याग ७ और मधु खानेका त्याग ८ ये आठ मूलगुण उत्तम प्रकारके हैं।

२। मध्यम प्रकारके आठमूल गुण-मद्यका त्याग १ मांसका त्याग २ मधुका त्याग ३ रात्रिमें भोजन करनेका त्याग ४ पांच उदंबर फलोंका त्याग ५ पांच परमेष्ठीकी त्रिकाल वन्दना करना ६ जीवदया पालन ७ और जल छान कर पीना ८ ये आठ मध्यम प्रकारके मूलगुण हैं।

३। पांच उदंबर फलोंका त्याग और मद्य मांस मधु का त्यागकर देना सो जघन्य प्रकारके आठ मूलगुण हैं।

इन तीन प्रकारके मूल गुणोंमें जो उत्तम प्रकारके मूल गुण धारण करेगा सो उत्कृष्ट दर्जेका दर्शनिक (दर्शन प्रतिमाधारी) कहलावेगा और मध्यम प्रकारके मूलगुण पालनेवाला मध्यम प्रकारका दर्शनिक (दर्शन प्रतिमाधारी) और जघन्य मूलगुणोंका धारक जघन्य दर्शनिक कहलावेगा।

२। व्रत प्रतिमा—पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रतोंको निरतिचार पालना सो दूसरी व्रतप्रतिमा है।

३। सामयिक प्रतिमा— प्रातःकाल मध्यान्हकाल और सायंकालमें छह घडी या ४ चार घडी वा दोय घडी निरतिचार सामायिक करना सो तीसरी सामयिक प्रतिमा है।

४। प्रोषध प्रतिमा—प्रत्येक सप्तमी त्रयोदशीके दिन प्रातःकाल ही सामायिक पूजा वगेरह करके दुपहरको भोजन करके मध्यान्हकालका सामायिक करके १६ पहर तक चार प्रकारके आहारोंका त्याग करके शेषके दोपहर दिन व रात्रि के ४ पहर धर्मध्यानमें वितावे तथा अष्टमी चतुर्दशीके दिन के ४ पहर और रात्रिके चार पहर और नवमी पूर्णमासीके वा अमावस्याके दोय पहर तक सामायिक पूजा वन्दनादि करके एकवार आहार ग्रहण करे इस तरह १६ पहर धर्मध्यानमेंही आरंभ छोडकर वितावे ऐसे प्रोपधपूर्वक उपवास को निरतिचार करते रहना सो प्रोषध प्रतिमा है।

५। सचित्त त्याग प्रतिमा- जो ज्ञानी सम्यग्दृष्टि, पत्र, फल, त्वक् (छाल) मूल, कोंपल, बीज, सचित्त (हरे वा कच्चे) न खावे सो सचित्तविरति श्रावक है। सचित्त त्याग प्रतिमाधारीको कच्चे सूके गेंहूं वगेरह खाने व कच्चे जलपान करनेका भी त्याग करना चाहिए। जलको या तो विधिसे छानकर गर्म करके अथवा लोंग इलायची आदि कषायले पदार्थ डालकर वेस्वाद करके पान करें।

६। रात्रिभुक्तित्याग प्रतिमा—जो ज्ञानी श्रावक रात्रि में चार प्रकार अशन, पान, खाद्य, स्वाद्यरूप आहार न तो आप ग्रहण करै और न दूसरेको भोजन पान करावे तथा दिनमें स्त्रीसेवनका त्याग करे सो छट्ठी रात्रिभुक्तित्याग प्रतिमा है। रात्रि भोजनका त्याग तो पहिली प्रतिमामें भी कराया गया है परंतु वहां पर कृत कारित अनुमोदना और मन वचन कायके दोष (अतिचार) लगते हैं परंतु छट्ठी प्रतिमामें सर्वथा शुद्ध (निरतिचार] त्याग है।

७। ब्रह्मचर्य प्रतिमा- मन वचन काय कृत कारित अनुमोदनासे सर्व प्रकारकी स्त्री सेवनेका पांच अतीचार रहित त्याग करना सो ब्रह्मचर्य नामकी सातवीं प्रतिमा है।

८। आरम्भत्यागप्रतिमा—मन वचन काय कृत कारित अनुमोदनासे गृहसंबन्धी आरम्भोंका त्याग करना सो आरम्भत्याग प्रतिमा है।

९। परिग्रहत्यागप्रतिमा—जो बाहरके दशों परिग्रहोंमें

ममताको छोड करके संतोष धारण करे, रुपया पैसा पास न रक्खे सो परिग्रह त्याग प्रतिमा है।

१०। अनुमतित्यागप्रतिमा—आरंभ परिग्रह तथा लोक संबंधी कार्योंमें अनुमती देनेका त्याग कर देना सो दशवीं अनुमति त्याग प्रतिमा है।

११। उद्दिष्ट प्रतिमा। कविता—

घरको तजि मुनि वनको जाकर गुरु समीप व्रतधारण कर।
तपते हैं भिक्षाशन करते, खंड वस्त्रधारी होकर॥
उत्तम श्रावकका पद यह है, जो मनुष्य इसको गहते।
उन्हें श्रेष्ठजन क्षुल्लक ऐलक, भाग्यवान् श्रावक कहते॥

इसका अर्थ स्पष्ट है।

—:०:—

७१. मेढककी कथा।

—:०:—

मगधदेशके राजगृह नगरमें राजा श्रेणिक राज्य करते थे, वहींपर नागदत्त सेठ रहते थे जिनकी स्त्रीका नाम भवदत्ता था। वह नागदत्त सेठ बडा मायावी था, इसलिये जब मरण हुआ तो मरकर अपने आंगनकी बावडीमें मेढक हुआ एक समय उस बावडीका जल भरनेके लिए भवदत्ता सेठानी आई उसे देखकर मेढकको पूर्वभवका जातिस्मरण हो आया जिससे कूदकर भवदत्ताके अंगको चाटने लगा। उसने (भव-

दत्ता) मेंढकको अपने ऊपरसे फटकार दिया, परन्तु फिर भी वह आ लिपटा और उसे चाटना शुरू कर दिया उसने कई वार अपनेसे अलग किया परंतु वह वार २ उसीके शरीर पर आकर चाटने लगा। सेठानीने विचार किया कि यह मेरा कोई स्नेही मालुम पडता है जिससे वार २ आकर मेरा पीछा नहीं छोडता है। वह वहांसे चलकर अवधिज्ञानी सुव्रत मुनिके पास गई और भक्तिसे नमस्कार कर पूछने लगी कि महाराज मेंढकका जीव पूर्वभवमें मेरा कौन था, जिसने आज मेरे ऊपर बडा स्नेह दर्शाया है। मुनि महाराजने सब वृत्तांत कह सुनाया कि यह मेंढक तुम्हारे स्वामी नागदत्त सेठका जीव है जो पूर्वभवका स्मरण करके तुम्हारे ऊपर इतना प्रेम जता रहा है। यह सुनकर भवदत्ता मुनिको नमस्कार कर चल दी और घर आकर उस दिनसे उस मेंढकको अपने पतिका जीव समझकर आनंदसे रखने लगी। एक वार महावीर स्वामीका वैभारपर्वत पर आगमन सुनकर राजा श्रेणिकने नगरमें आनंद भेरी वजवा दी और पुरवासियोंके साथ वैभार पर्वतपर बर्द्धमान स्वामीके दर्शनके लिये जा पहुंचा। सेठानी भवदत्ता भी वडे हर्षके साथ गई जब मेंढकको यह खवर लगी तो वावडीमेंसे एक कमल मुंहमें दवाकर भगवानकी पूजाके लिये चल दिया रास्तेमें वडे आल्हादके साथ जा रहा था कि हाथीके पैरसे दवकर मरगया और पूजाके भावोंके कारण सौधर्म स्वर्गमें बडी ऋद्धिका धारी

देव हुआ। देव हुये देरी न हुई थी कि अवधिज्ञानके द्वारा अपना पूर्वभव स्मरण करके भगवानकी पूजाकेलिये अपने मुकुटमें मेंढकका चिन्ह लगाकर चल दिया और भगवानके पास आकर अतिभक्तिसे बंदना कर बैठ गया। जब राजा श्रेणिकने इसे देखा तो गौतम स्वामीसे पूछा कि—इस देवके मुकुट पर जो भेकका चिन्ह दिखाई देता है इसका कारण क्या है? क्योंकि देवोंके मुकुटोंपर भेकके चिन्ह नहीं हुवा करते हैं। गौतम गणधरने कहा कि यह देव पूर्वभवमें मेंढक था किंतु इसके भाव महावीर स्वामीकी पूजा करनेके थे। भाग्यसे यह कमल लिए आ रहा था परंतु रास्तेमें हाथी के पैरसे कुचलकर यह देव भया है इसे पूर्वभवका स्मरण हो गया है इसलिये अपनेको यह जतानेके लिये कि मैं पूर्वभव में मेंढक था और पूजाके प्रतापसे देव हुआ हूं, अपने मुकुटपर भेकका चिन्ह धारण कर रक्खा है। राजा श्रेणिक व अन्य जन यह सुनकर बडे चकित हुए और उस दिनसे राजा श्रेणिक व अन्य भव्यजनोंने नियम ले लिया कि हम सब विना पूजनके भोजन नहीं किया करेंगे।

यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि जो व्यक्ति चाहे गरीब हों या धनवान, भगवानकी भावोंसे पूजा करते हैं उन्हें इस अलौकिक सुखकी प्राप्ति हो जाती है जिसका वर्णन करना वचनके अगोचर है।

———

७२. गुरु अष्टक।

१

संघसहित श्री कुंदकुंद गुरु, वंदन हेत गये गिरनार।
वाद परचो तह संशयमतसों, साक्षी वदी अंबिकाकार॥
'सत्यपंथ निरग्रन्थ दिगम्बर' कही सुरी तहँ प्रगट पुकार।
सो गुरुदेव वसो उर मेरे, विघ्नहरण मंगल करतार॥ १॥

२

स्वामी समंतभद्र मुनिवरसों, शिवकोटी हठ कियो अपार।
वंदन करो शंभु पिंडीको, तव गुरु रच्यौ स्वयंभूभार॥
वंदन करत पिंडिका फाटी, प्रगट भये जिनचंद्र उदार।
सो गुरुदेव वसो उर मेरे, विघ्नहरन मंगल करतार॥ २॥

३

श्रीअकलंक देव मुनिवरसों, वाद रच्यो जहँ बौद्ध विचार॥
तारा देवी घटमें थापी, पटके ओट करत उच्चार॥
जीत्यो स्यादवाद बल मुनिवर, बौद्ध वेधि तारापद टार।
सो गुरुदेव वसो उर मेरे, विघ्नहरन मंगल करतार॥ ३॥

४

श्रीमत् विद्यानंदि जबै, श्रीदेवागम थुति सुनी सुधार।
अर्थहेत पहुंच्यो जिनमंदिर मिल्यो अर्थ तहँ सुखदातार॥
तब व्रत परम दिगंबरको धर, परमतको कीनो परिहार।
सो गुरुदेव वसो उर मेरे, विघ्नहरन मंगल करतार॥ ४॥

५

श्रीमत वादिराज मुनिवरसों, कह्यो कुष्ठि भूपति जिँहवार।
श्रावक सेठ कह्यो तिस अवसर, मेरे गुरु कंचन तनधार॥
तब ही एकीभाव रच्यो गुरु, तन सुवरण दुति भयो अपार।
सो गुरुदेव वसो उर मेरे, विघनहरन मंगल करतार॥ ५॥

६

श्रीमत मानतुंग मुनिवरपर, भूप कोप जब कियो गवाँर।
बंद कियो तालेमें तबही, भक्तामर गुरु रच्यौ उदार॥
चक्रेश्वरी प्रगट तब होके, बंदन काट कियो जयकार।
सो गुरुदेव वसो उर मेरे, विघनहरन मंगल करतार॥ ६॥

७

श्रीमत कुमुद चंद्र मुनिवरसों, वाद परचो जहँ सभामझार।
तब ही श्रीकल्यान धाम थुति, श्रीगुरुरचना रची अपार॥
तब प्रतिमा श्रीपार्श्वनाथकी, प्रगट भई त्रिभुवन जयकार।
सो गुरुदेव वसो उर मेरे, विघनहरन मंगल करतार॥ ७॥

८

श्रीमत अभयचंद्र गुरुसों जब, दिल्लीपति इम कही पुकारि॥
कै तुम मोहि दिखावहु अतिशय, कै पकरो मेरो मत सार॥
तब गुरु प्रगटि अलौकिक अतिशय, तुरत हरयो ताको मदभार
सो गुरुदेव वसो उर मेरे, विघनहरन मंगल करतार॥ ८॥

दोहा।

विघनहरन मंगल करन, वांछित फलदातार।
वृन्दावन अष्टक रच्यो, करा कंठ सुखकार॥ १॥

इसके सिवाय इन भागोंमें यह भी विशेषता है कि—अनेक पाठ-शालाओंमें स्वास्थ्य, वा धर्मसंबंधी जीवाजीवविचार आदि विषयोंकी पुस्तकें जुदी २ पढानी पडती हैं सो हमने उन विषयोंका इन भागोंमेंही यथास्थानपर समावेश कर दिया है जिससे कोई पुस्तक जुदी न पढाकर इस एक पुस्तकके पढानेसे ही समस्त विषयोंका ज्ञान प्राप्त होजायगा। हां। हिंदी व्याकरण व गणित मात्र जुदा अवश्य पढाना पडेगा। और संस्कृत पढाना हो तो इसका चौथा भाग पढानेके बाद संस्कृतकी प्रवेशिकादि कक्षाओंमें पढाना ठीक होगा।

ये सब विषय हमने बंबई जैन यूनिवर्सिटी वा माळवा प्रांतिक जैन यूनिवर्सिटी और गोपालजैनसिद्धांतविद्यालयके पठन क्रमानुसार ही रक्खे हैं। अतएव इन सबके पठन क्रममें इन भागोंको रखकर परीक्षा लेनेका प्रचार करेंगे तो यह श्रम सार्थक समझा जायगा।

निवेदक—

मोरेना—१—१—१९२२ ई०] पन्नालाल बाकलीवाल।